विश्वभारती पत्रिका

साहित्य और संस्कृति संबंधी हिन्दी त्रैमासिक
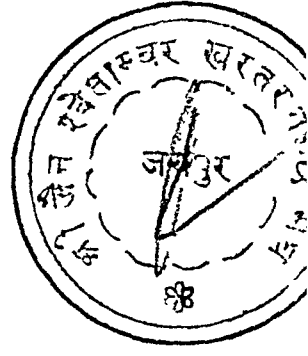
सत्यं ह्येकम् । पन्थाः पुनरस्य नैकः ।

अथेयं विश्वभारती । यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् । प्रयोजनम् अस्याः समासतो व्याख्यास्यामः । एष नः प्रत्ययः—सत्यं ह्येकम् । पन्थाः पुनरस्यः नैकः । विचित्रैरेव हि पथिभिः पुरुषा नैकदेशवासिन एकं तार्थमुपासर्पन्ति—इति हि विज्ञायते । प्राची च प्रतीची चेति द्वे धारे विद्यायाः । द्वाभ्यामप्येताभ्याम् उपलब्धव्यमैक्यं सत्यस्याखिललोकाश्रयभूतस्य—इति नः संकल्पः । एतस्यैवैक्यस्य उपलब्धिः परमो लाभः, परमा शान्तिः, परमं च कल्याणं पुरुषस्य इति हि वयं विजानीमः । सेयमुपासनीया नो विश्वभारती विविधदेशप्रथिताभिर्विचित्रविद्याकुसुममालिकाभिरिति हि प्राच्याश्च प्रतीच्याश्चेति सर्वेऽप्युपासकाः सादरमाहूयन्ते ।

विश्वभारती पत्रिका, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन के तत्त्वावधान में प्रकाशित होती है। इसलिए इसके उद्देश्य वे ही हैं जो विश्वभारती के हैं। किन्तु इसका कर्मक्षेत्र यहीं तक सीमित नहीं। संपादक-मंडल उन सभी विद्वानों और कलाकारों का सहयोग आमंत्रित करता है जिनकी रचनायें और कलाकृतियाँ जाति-धर्म-निर्विशेष समस्त मानव जाति की कल्याण-बुद्धि से प्रेरित हैं और समूची मानवीय संस्कृति को समृद्ध करती हैं। इसीलिए किसी विशेष मत या वाद के प्रति मण्डल का पक्षपात नहीं है। लेखकों के विचार-स्वातंत्र्य का मण्डल आदर करता है परन्तु किसी व्यक्तिगत मत के लिए अपने को उत्तरदायी नहीं मानता।

लेख, समीक्षार्थ पुस्तकें तथा पत्रिका से संबंधित समस्त पत्र व्यवहार करने का पता :—

संपादक, 'विश्वभारती पत्रिका',

हिन्दी भवन, शान्तिनिकेतन, बंगाल।

"यदि मैं

रेलवे प्रशासन का

उच्च अधिकारी होता....

तो मैं यही परामर्श देता कि जनता से कह दिया जाय कि टिकिट न खरीदने से गाड़ियां बन्द करदी जायेंगी और जब वे खुशी खुशी भाड़ा चुका देंगे तभी गाड़ियां फिर चलेंगी।"

— महात्मा गांधी

विश्वभारती पत्रिका

आषाढ़-भाद्र, २०२५ | खण्ड ६, अंक २ | जुलाई-सितंबर १९६८

विषय-सूची

इस अंक के लेखक (अकारादि क्रम से)

गुरुचरण सिंह मोंगिया, अध्यापक, हिंदी विभाग, खालसा कालेज, जालंधर।

परशुराम चतुर्वेदी, प्रसिद्ध विद्वान्-लेखक, बलिया।

पुरुषोत्तम शर्मा, अध्यापक, हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, ईवनिंग कालेज, जालंधर।

प्रेम नारायण, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, राजकीय डिग्री कालेज, पिथौरागढ़।

मदन कुमार, अध्यापक, हिंदी विभाग, मारवाड़ी कालेज, भागलपुर।

रमेश कुंतल मेघ, रीडर इंचार्ज, पंजाब यूनिवर्सिटी, प्रादेशिक हिंदी केंद्र, जालंधर।

रामसिंह तोमर, अध्यक्ष, हिन्दी-भवन, शान्तिनिकेतन।

शालिग्राम गुप्त, अध्यापक, हिन्दी-भवन, शान्तिनिकेतन।

श्रीमन्नारायण द्विवेदी, अध्यापक, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद एग्रीकल्चरल इंस्टिट्यूट, इलाहाबाद।

सुरेश चन्द्र मिश्र, शोध छात्र, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।

महापण्डित विमलमित्र

विश्वभारती पत्रिका

आषाढ़-भाद्र २०२५ खण्ड ९, अंक २ जुलाई-सितंबर १९६८

कहानी

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बालक ने ज्यों ही बोलना सीखा, त्यों ही उसने कहा, "कहानी सुनाओ।"

नानी ने कहना शुरू किया, "एक [था] राजपुत्र, कोतवालपुत्र, सौदागरपुत्र— "

गुरु जी ने हाँक लगाई, "तीन—चौक बारह।"

किन्तु उस समय उस से भी बड़ी हाँक लगाई राक्षस ने "हाँउ माउ खाँउ" [मैं मनुष्य को खाऊँगा][1]—पहाड़े की हुँकार बालक के कानों तक नहीं पहुँचती।

जो हितैषी थे, बालक को कमरे में बन्द करके गंभीर स्वर में बोले, "तीन—चौक बारह यही है सत्य ; और राज-पुत्र, कोतवाल-पुत्र, सौदागर-पुत्र, वे मिथ्या बातें हैं अतएव— "

उस समय बालक का मन उस मानस चित्र के समुद्र को पार कर चुका होता है जिसका पता मानचित्र में नहीं मिलता ; तीन—चौक बारह उसके पीछे पीछे पार होना चाहता है, किन्तु वहां पहाड़े की पतवार को थाह नहीं मिलती।

हितैषी ने सोचा, निरी शैतानी है, बेंत से सुधारना चाहिए।

नानी गुरु जी के हाल देखकर चुप बनी रहीं। किन्तु विपत्ति टलना नहीं चाहती, एक जाती है तो दूसरी आ धमकती है। कथावाचक आकर आसन पर जम बैठे। उन्होंने आरम्भ कर दी किसी राजकुमार के बनवास की कथा।

जब राक्षसी की नाक काटी जा रही थी तब हितैषी बोले, "इतिहास में इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता ; जिसका प्रमाण गली-गली में मिलता है, वह है तीन—चौक बारह।"

तब तक हनुमान आकाश में कूदे, उतनी ऊँचाई पर इतिहास उनके साथ किसी प्रकार बाजी नहीं लगा सकता। पाठशाला से स्कूल, स्कूल से कालेज में बालक के मन को पुटपाक

---

१. काल्पनिक राक्षस की हुँकार।

द्वारा शोधन किया जाने लगा। किन्तु जितना भी द्रवण किया जाता पर यह बात कैसे भी मिटना नहीं चाहती "कहानी सुनाओ।"

२

इससे मालूम होता है, केवल शिशुवय में ही नहीं प्रत्येक वय में ही मनुष्य कहानीपोष्य जीव है। इसीलिए सारे संसारभर में मनुष्य के घर-घर, युग-युग, वाणी-वाणी, लेखनी-लेखनी में जो कहानी संचित हो उठी है वह मनुष्य के सारे संचय को पार कर गई है।

हितैषी एक बात भलीप्रकार सोचकर नहीं देखते, कहानी लिखने का नशा ही सृष्टिकर्ता का सर्वोपरि नशा है, उनका शोधन न कर पाने से मनुष्य के शोधन की आशा करना व्यर्थ है।

एक दिन वे अपने कारखाने के कमरे में आग से पानी, पानी से मिट्टी गढ़ने में लग गए। सृष्टि उस समय पसीने से लथपथ वाष्पभाराकुल थी। उस समय धातु पत्थर के पिण्डों को श्रेणीबद्ध जमाया जा रहा था, चारों ओर माल-मसाला फैला हुआ था और धमाधम पिटाई चल रही थी। उस दिन विधाता को देखकर किसी भी प्रकार सोचा नहीं जा सकता था कि उनमें भी कहीं कोई बचपना है। उस समय का क्रिया कलाप था जिसे कहते हैं 'सारवान'।

उसके बाद कब शुरू हुआ प्राणों का पत्तन। घास उगी, पेड़ जमे, जानवर दौड़े, पक्षी उड़े। कोई मिट्टी पर बँधे आकाश की ओर अंजलि फैलाकर खड़े हुए, कोई छूट पाकर सारी पृथ्वी पर अपने को बहुधा विस्तार कर चले, कोई पानी की यवनिका के नीचे निःशब्द नृत्य द्वारा पृथ्वी प्रदक्षिणा करने में व्यस्त थे, कोई आकाश में पंख फैलाकर सूर्यलोक की वेदी के नीचे गान की अर्घ्यरचना में उत्सुक थे। विधाता के मन का चांचल्य अभी से पकड़ाई देने लगा।

इसी प्रकार बहुत से युग बीत गए। अकस्मात् एक समय किसी ख्यालवश सृष्टिकर्ता के कारखाने में उनचास पवन की तल्बी हुई। उन सभी को लेकर उन्होंने मनुष्य को गढ़ा। इतने दिनों के बाद आरम्भ हुआ उनकी कहानी का क्रम। उनके बहुत दिन विज्ञान, कारुशिल्प में बीते, अब उनका साहित्य आरम्भ हुआ।

वे मनुष्य को कहानी—कहानी में प्रस्फुटित करने लगे। पशुपक्षियों का जीवन, आहार, निद्रा, संतान पालन हुआ, मनुष्य का जीवन हुआ कहानी। कितनी वेदनाएँ, कितनी घटनाएँ, सुखदुःख राग विराग भले बुरे के कितने ही घात प्रतिघात। इच्छा के साथ इच्छा एक के साथ दस, साधना के साथ स्वभाव, कामना के साथ घटनाओं के संधान के कितने आवर्तन।

नदी जैसे जलस्रोत की धारा है, वैसे ही मनुष्य कहानी का प्रवाह है। इसी कारण परस्पर मिलते ही प्रश्न यह (होता है), "क्या हुआ जी, क्या खबर है, उसके बाद।" इसी 'उसके बाद' के साथ 'उसके बाद' को पिरोया जाकर सारी पृथ्वी पर मनुष्य की कहानी गुथी जा रही है। उसी को कहते हैं जीवन की कहानी, उसी को कहते हैं मनुष्य का इतिहास।

विधाता का रचा इतिहास और मनुष्य की रची कहानी, इन्हीं दो को मिलाकर मनुष्य का संसार है। मनुष्य के लिए केवलमात्र अशोक की कहानी, अकबर की कहानी ही सत्य हो ऐसा नहीं है ; वह राजा का पुत्र जो सात-समुद्र पार कर सात-राजा के धन माणिक्य की खोज में निकलता है वह भी सत्य है ; और उस भक्ति विमुग्ध हनुमान के सरल वीरत्व की बात भी सत्य हैं जिस हनुमान को गन्धमादन को उत्पाटित कर लाने में भी कोई हिचक नहीं हुई। इस मनुष्य के लिए औरङ्गजेब भी जैसा सत्य है, दुर्योधन भी वैसा ही सत्य है। किसी का प्रमाण अधिक है, किसी का कम उस दृष्टि से नहीं ; केवल कहानी की दृष्टि से कौन सा असली है वही उसके लिए सब से अधिक सत्य है।

मनुष्य विधाता के साहित्यलोक ही में मनुष्य है, इस कारण न तो वह वस्तु द्वारा गठित है, न तत्व द्वारा—हितैषी अनेक चेष्टा द्वारा भी किसी प्रकार यह बात मनुष्य को भुला नहीं सके। अन्त में हैरान होकर हितकथा के साथ कहानी की सन्धि स्थापन की चेष्टा की, किन्तु हमेशा के स्वभाव दोष से किसी प्रकार जोड़ नहीं मिला पाए। तब कहानी भी छँट गई, हितकथा भी खिसक गई, आवर्जना जमा हो उठी।

अनुवादिका
कणिका तोमर

नव नाथों को कल्पना

परशुराम चतुर्वेदी

"नाथ योगी सम्प्रदाय" का परिचय देते समय प्राय किन्हीं ऐसे नव नाथों की भी चर्चा की जाती है जिनके नाम विभिन्न सूचियों मे पाये जाते हैं तथा जिनके लिए यह भी कहा जा सकता है कि वे सभवत इसके प्रमुख प्रवर्तक रह चुके होंगे। इस प्रकार की सूचियों में से अधिकांश के अतर्गत उन महापुरुषों के नाम ठीक ९ की ही सख्या मे निश्चित कर दिये गये भी दीख पड़ते हैं जिससे इस बात की भी पुष्टि हो जाती है कि वे वस्तुत ९ ही रहे होंगे, तथा इसी कारण, उन्हें नव नाथ भी कहा गया होगा। इसलिए यदि ऐसे ९ विशिष्ट पुरुषों का कोई प्रामाणिक वृत्तान्त भी उपलब्ध हो सके तो, यह सम्प्रदाय के इतिहास का पता लगाते समय हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है तथा उसके आधार पर अनेक ऐसी प्रचलित भ्रान्तियों का निराकरण भी किया जा सकता है जिनके कारण अभी तक सम्प्रदाय का कोई सर्वसम्मत परिचय नहीं दिया जा सका है। परन्तु आश्चर्य है कि जहां कहीं वैसे ९ नाम दीख पड़ते हैं वहां पर वे न केवल सर्वत्र एक से ही नहीं पाये जाते, प्रत्युत, कहीं-कहीं या तो उन सबको अथवा उनमें से कुछ को व्यक्तिवाचक सज्ञा की जगह भाववाचक जैसा रूप दे दिया गया मिलता है जिस कारण हमारी तद्विषयक समस्याए स्वभावत अधिक उग्र बन जाया करती हैं। इसके सिवाय, ऐसी उपलब्ध सूचियों का कोई तुलनात्मक अध्ययन करने पर, हमें यह प्रतीत होता है कि इन्हें पृथक्-पृथक् तैयार करते समय सभवत एक से अधिक भिन्न भिन्न दृष्टियों से काम लिया गया होगा जिसके आधार पर हमें उन्हें बनाने वालों के विभिन्न पूर्वग्रहों का भी कुछ सकेत मिल जाता है।

जहां तक पता चलता है ऐसी उपलब्ध सूचियों की सख्या ३० से भी अधिक हो सकती है और इनमें या तो किन्हीं विशिष्ट ९ नाथों का नाम निर्देश कर दिया गया मिलता है अथवा इनके अतर्गत उन्हें विभिन्न रूपों में प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई दीखती है। इनमें से प्रथम वर्ग में हम उन ऐसी सूचियों को रख सकते हैं जिनकी चर्चा ठेठ नाथ पथ के सांप्रदायिक ग्रथों में की गई मिलती है तथा उनमें हम इस प्रकार की नामावलियों को भी स्थान दे सकते हैं जो न्यूनाधिक उनके ही आधार पर बनी जान पड़ती हैं और इन दोनों को ही हम सुविधानुसार सांप्रदायिक सूची जैसे शीर्षक के नीचे ला सकते हैं। इसी प्रकार उक्त प्रथम वर्ग के ही अतर्गत वे सूचिया भी रखी जा सकती हैं जो या तो दत्त सम्प्रदाय या वारकरी सम्प्रदाय द्वारा प्रभावित हैं तथा जिन्हें, इसीलिए, क्रमश दत्त सम्प्रदाय प्रभावित वारकरी सम्प्रदाय प्रभावित अथवा मिश्रित जैसे विभिन्न शीर्षकों के अनुसार विभाजित कर सकते

हैं। उपर्युक्त दूसरे वर्ग की सूचियों में हम उन शेष के नाम ले सकते हैं जो यातो किसी न किसी तांत्रिक ग्रंथ में पायी जाती हैं अथवा जिनपर उनका प्रभाव स्पष्ट रूप में लक्षित होता है तथा जिनमें यातो व्यक्तिगत नाम का कहीं पता ही नहीं चलता अथवा यदि उनका कहीं उल्लेख भी किया गया मिलता है तो वह भी वैसे नामधारी के किसी न किसी गुण का ही परिचायक होता है। इन सारी सूचियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी अन्य नामावलियां भी पायी जाती हैं जिनके प्रस्तुतकर्त्ताओं की दृष्टि केवल नाथपंथियों के ही नामों का उल्लेख करने की ओर नहीं गई जान पड़ती प्रत्युत जिनमें ऐसे नाम प्रायः प्रासंगिक रूप में आ गये रहते हैं।

अतएव, यदि हम, उपर्युक्त सभी सूचियों को ध्यान में रखते हुए, उनमें से प्रत्येक शीर्षक के नीचे लाये जाने योग्य नामोंवाली तालिकाओं की पृथक्-पृथक् तुलनात्मक छान बीन कर सकें और फिर इस प्रकार प्राप्त परिणामों के ऊपर एक बार अंत में विचार कर लें तो संभव है, हमें कुछ ऐसे नाम हाथ लग जायं जो न्यूनाधिक सर्वसम्मत ठहराये जा सकते हैं तथा जिनके आधार पर हमें कुछ ऐसे संकेत भी मिल जायं जिससे वास्तविक नव नाथों की कोई कामचलाऊ सूची भी निर्मित की जा सके। तदनुसार हम, सर्व प्रथम, उक्त पहले शीर्षक वाली विभिन्न सांप्रदायिक सूचियों से ही आरम्भ करना चाहते हैं। इनमें से प्रत्येक में आये हुए नामों को देकर तथा उनकी परस्पर तुलना कर लेने पर हम, इसी प्रकार, अन्य शीर्षकों की भी चर्चा करेंगे।

१—"कदली मञ्जुनाथ माहात्म्य[१]" (भारद्वाज संहिता) की सूची :—(१) आदि नाथ (२) मीन नाथ (३) कंथड नाथ (४) गोरक्ष (५) कोंकण (६) विरूपाक्ष (७) अनंग (८) जलन्धर और (९) अरुणाचल नाथ ;

२—"नव नाथ चरित्रमु"[२] तेलुगु ग्रंथ (लेखक गौरन्न मंत्री) की सूची :—(१) शिव नाथ (२) मीन नाथ (३) सारंगधर (४) गोरक्षनाथ (५) मेघनाद (६) नागार्जुन (७) सिद्ध बुद्ध (८) विरूपाक्ष और (९) कणिक ;

३—"गोरख उपनिषद्"[३] से प्राप्त सूची :—(१) आदिनाथ (२) उदयनाथ (३)

---

१. "गोरक्ष ग्रन्थमाला" (५५) (गोरक्ष टिल्ला, वाराणसी, १९५३ ई०) पृष्ठ ६४-५।

२. "श्री गुरु गोरक्षनाथ : चरित्र आणि परम्परा" (ले० रा० चिं० ढेरे, मुंबई, १९५९ ई०) पृ० ११५-६ पर उद्धृत।

३. "सिद्ध सिद्धान्त पद्धति" (सं० डा० कल्याणी मल्लिक, पूना, १९५४ ई०) पृ० ७३-७४।

मत्स्येन्द्रनाथ (४) गोरक्षनाथ (५) सत्यनाथ (६) सन्तोषनाथ (७) दण्डनाथ (८) और (९) कूर्मनाथ,

४—"गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह"४ की सूची —(१) आदिनाथ (२) मत्स्येन्द्रनाथ (३) उदयनाथ (४) दण्डनाथ (५) सत्यनाथ (६) सन्तोषनाथ (७) कूर्मनाथ (८) भवनाजि और (९) गोरक्षनाथ,

५—"नव नाथ कथा"५ (गोरक्षटिल्ला, वाराणसी स० २००८) की सूची —(१) आदिनाथ (ज्योतिस्वरूप ऊंकार महेश) (२) उदयनाथ (धरती स्वरूप पार्वती) (३) सत्यनाथ (जल स्वरूप ब्रह्म) (४) विष्णु (तेज स्वरूप) (५) अचलनाथ (वायु स्वरूप शेष नाग) (६) नभो रूप गणेश=कथड़ि (७) चौरंगी (वनस्पति स्वरूप चंद्रमा) (८) मत्स्येन्द्रनाथ (माया स्वरूप) और (९) गोरक्षनाथ (अलक्ष्य स्वरूप अयोनि शंकर त्रिनेत्र),

६—"शिव दिन मठ" की परम्परा६वाली सूची —(१) आदिनाथ (२) उदोनाथ (३) सत्यनाथ (४) सन्तोषनाथ (५) गणेशनाथ (६) कार्तिकनाथ (७) मच्छीन्द्रनाथ (८) गोरक्षनाथ और (९) चौरंगीनाथ,

७—एक अन्य प्रचलित परम्परा ७ वाली सूची —(१) आदि नाथ (२) उदय नाथ (३) सत्य नाथ (४) सन्तोषनाथ (५) गज कर्ण (६) औघड़ (७) मच्छेन्द्र (८) चेरंग और (९) गोरक्ष,

८—"सुधाकर चन्द्रिका"८ की तालिका —(१) एक नाथ (२) आदि नाथ (३) मत्स्येन्द्र नाथ (४) उदयनाथ (५) दण्ड नाथ (६) सत्य नाथ (७) सन्तोषनाथ (८) कूर्मनाथ और (९) जालधर नाथ,

९—डभोई दुर्ग में प्राप्त मूर्तियों के आधार पर अनुमानित९ सूची —(१) आदिनाथ

---

४. सरस्वती भवन टेक्स्ट्स नं० १८, १९२५ ई०, पृ० ४०।

५ वाराणसी, स० २००८, पृ० १।

६ "श्री गुरु गोरक्षनाथ", इत्यादि पृ० ११७।

७ डा० कल्याणी मल्लिक नाथ सम्प्रदायेर इतिहास, दर्शन ओ साधना प्रणाली (कलिकाता विश्वविद्यालय, १९५० ई०) पृ० ८९ पर उद्धृत।

८ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी नाथ सम्प्रदाय इलाहाबाद, १९५० ई० पृ० २५ पर उद्धृत।

९ 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (वर्ष ६२, अंक २-३) पृ० १८४-९।

(२) मत्स्येन्द्रनाथ (३) जालंधरनाथ वा चौरंगीनाथ (४) गोरक्षनाथ (५) कानिफनाथ (६) कंथडिनाथ (७) मयनावती (८) और (९) गोपीचन्द ;

१०—किट्स वाले बरार की जनगणना—सम्बन्धी प्रतिवेदन१० की सूची :—(१) ओंकारनाथ (२) सन्तोषनाथ (विष्णु) (३) गजबली (हनुमान) (४) अचलेश्वर (गणपति) (५) उदयनाथ (सूर्य) (६) पार्वतीप्रिय (शिव) (७) सतनाथ (ब्रह्मा) (८) ज्ञानी जी (सिद्ध चौरंगी जगन्नाथ (?) और (९) मत्स्येन्द्र (माया रूपी) ;

११—रोज़ वाली पंजाब एवं पश्चिमोत्तर प्रदेश-सम्बन्धी "ग्लासरी"११ में दी गई सूची :—(१) ओंकार आदि नाथ (शिव) (२) शेलनाथ (राम वा कृष्ण) (३) सन्तोषनाथ (४) अचल नाथ (लक्ष्मण वा हनुमान) (५) गजवलि गजकंठनाथ (गणेश) (६) प्रजानाथ वा उदयनाथ (पार्वती) (७) मत्स्येन्द्र (माया रूपी) (८) गोरखनाथ (गथेपिंडे) और (९) चौरंगीनाथ (पुरुष प्रसिद्ध ज्ञान स्वरूप) ;

१२—"हठ योग प्रदीपिका"१२ के अनुसार महासिद्धों की सूची :—(१) आदिनाथ (२) मत्स्येन्द्र (३) शाबर (४) आनन्द भैरव (५) चौरंगी (६) मीन (७) गोरक्ष (८) विरूपाक्ष (९) विलेशय (१०) मंथान भैरव (११) सिद्धि बुद्ध (१२) कंथडि (१३) कोरंटक (१४) सुरानंद (१५) सिद्ध पाद (१६) चर्पटी (१७) कानेरी (१८) पूज्यपाद (१९) नित्यनाथ (२०) निरंजन (२१) कपाली (२२) विदुंनाथ (२३) काकचंडी (२४) अल्लम प्रभुदेव (२५) घोडा चोली (२६) टिंटिणी (२७) भानुकी (२८) नारदेव (२९) खण्ड कापालिक आदि ।

यदि इन ठेठ सांप्रदायिक सूचियों में सम्मिलित किए गए नामों पर विचार किया जाय तो पता चल सकता है कि इनमें से अंतिम के अंतर्गत केवल नव नाथों तक ही उसे सीमित रखने की चेष्टा नहीं लक्षित होती जिस कारण यह उतनी महत्त्वपूर्ण भी नहीं है और प्रायः इसी प्रकार का कथन डभोई दुर्ग की मूर्तियों वाली सूची पर विचार करने पर भी किया जा सकता है। तदनुसार शेष १० सूचियां रह जाती हैं जिनमें से "गोरख उपनिषद्", "गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह", शिव दिन मठ की परम्परा तथा एक अन्य ऐसी परम्परा की सूचियों आर

---

१०. Kitts ; 'Brar Census Report' (1881) p. 59.

११. Rose, H.A. : "A Glossary of the Tribes and Castes of the Punjab and the N. W. Provinces" (Lahore, 1914) Vol. II pp. 397-8.

१२. मुंबई प्रथमोपदेश (श्लो० ५-९)।

"सुधाकर-चन्द्रिका" की नामावली में उदयनाथ, सत्यनाथ एवं सन्तोषनाथ के नाम एक समान आते हैं और प्रथम, तृतीय एवं पंचम के अंतर्गत आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ भी आ गये हैं—"सुधाकर-चन्द्रिका" में कदाचित् "गोरक्षनाथ' की जगह "एक नाथ" कर दिया गया हो सकता है। इसी प्रकार "गोरक्ष उपनिषद्", "गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह" तथा "सुधाकर चन्द्रिका" के अंतर्गत दण्डनाथ एवं कूर्मनाथ के नाम एक समान हैं। इसके सिवाय जहां "गोरक्ष सिद्धांत संग्रह" में आठवां नाम भवनाजि का आता है वहां "गोरक्ष उपनिषद्" में वहां पर कोई भी नाम दिया गया नहीं जान पड़ता तथा "सुधाकर चन्द्रिका" में कदाचित् उसी के लिए ९ वें स्थान में जालंधर नाथ का नाम आ गया दीख पड़ता है। इसके विपरीत शिव दिन मठ की परम्परा एवं द्वितीय परम्परा वाली तालिकाओं में गणेश वा गजकर्ण तथा चौरंगी वा चेरंग के नाम एक समान से आये हैं और इनमें से द्वितीय में जहां ६वां नाम औघड़ का आता है वहां प्रथम के अंतर्गत वहां पर कात्तिक नाथ दिया गया मिलता है। अतएव इन पांच सांप्रदायिक सूचियों के नामों पर विचार करने पर एक यह प्रश्न भी उठ सकता है कि, क्या भवनाजि, कात्तिकनाथ, औघड़ एवं जालंधर नाथ के बीच किसी प्रकार के संबंध का अनुमान तो नहीं किया जा सकता ?

शेष पांच सांप्रदायिक सूचियों में से "कदली मंजुनाथ माहात्म्य" और "नवनाथ चरित्रमु' वाली सूचियों में आदिनाथ, मीननाथ, गोरक्षनाथ, एवं विरूपाक्ष के नाम एक समान आते जान पड़ते हैं क्योंकि द्वितीय के शिवनाथ आदि नाथ हो सकते हैं। इसी प्रकार किटस एवं रोज़ की तालिकाओं में भी, हमें ओंकार नाथ, सन्तोषनाथ, गजवलि, उदयनाथ एवं मत्स्येन्द्र के नाम एक समान दीखते हैं—केवल इनमें बतलाये गये पर्यायों में से प्रथम एवं तृतीय को जहां रोज़ ने क्रमश शिव और गणेश कहा है वहां किट्स ने उन्हें उसी प्रकार विष्णु एवं हनुमान मान लिया है और द्वितीय ने जहां अचल को गणपति समझा है वहां प्रथम ने उसकी जगह पर लक्ष्मण का होना अनुमान किया है जो कदाचित् उनके "शेष" भी कहलाने के कारण, अधिक सुसंगत हो सकता है। इसके सिवाय "नवनाथ कथा" के उदयनाथ एवं मत्स्येन्द्र इन दोनों के नाम एक समान जान पड़ते हैं, किंतु इसका सत्यनाथ केवल किटस में ही "सतनाथ" के रूप में आया है तथा इसमें नव नाथों को जहां हम भौतिक पदार्थों के साथ देखते हैं वहां रोज़ में ऐसा नहीं पाया जाता। यहां पर एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि "कदली मंजुनाथ माहात्म्य" तथा "नव नाथ चरित्रमु" वाली सूचियों में हमें मीननाथ नाम आता दीखता है जहां अन्य सभी में उसकी जगह मत्स्येन्द्र वा मच्छिन्द्र आया है जिस कारण, यदि ये दोनों ग्रंथ किसी प्राचीनतर परम्परा का अनुकरण करने वाले सिद्ध किये जा सकें तो, यह भी कहा

जा सकता है कि मत्स्येन्द्रनाथ नाम कभी पीछे प्रचलित हुआ होगा। परन्तु "हठयोग प्रदीपिका" के अंतर्गत ये दोनों ही नाम पृथक् पृथक् भी एक ही जगह दिये गये दीख पड़ते हैं जिस कारण यहां पर ऐसा ही लगता है कि ये दोनों दो भिन्न व्यक्तियों को सूचित करते हैं। अतएव, बिना किसी अन्य प्रामाणिक सामग्री पर विचार किये, इस विषय में कोई अंतिम निर्णय कर पाना संभव नहीं जान पड़ता।

इसी प्रकार यदि हम दत्त संप्रदाय अथवा वारकरी संप्रदाय द्वारा प्रभावित सूचियों का विचार करने लगते हैं तो हमारे सामने नीचे दी गई नाम-तालिकाएं आती हैं जिन पर पहले पृथक्-तथा फिर एक बार एक साथ भी दृष्टि डाली जा सकती है :—

१—"योगिसंप्रदायाविष्कृति"१३ (लें० चन्द्रनाथ योगी) के आधार पर बनी सूची :—

(१) मत्स्येन्द्रनाथ (कवि नारायण) (२) गहनी नाथ (करभाजन नारायण) (३) ज्वालेन्द्र नाथ (अंतरिक्ष नारायण) (४) करणिपानाथ (प्रबुद्ध नारायण) (५) नाग नाथ (?) (आविर्होत्र नारायण) (६) चर्पट नाथ (पिप्पलाद नारायण) (७) रेवानाथ (चमस नारायण) (८) भर्तृनाथ (हरि नारायण) और (९) गोपीचन्द्रनाथ (द्रुमिल नारायण) :

२—"श्री नवनाथ चरित्र"१४ (मराठी, लें० मालु कवि) की सूची :—(१) मच्छिंद्रनाथ (२) गोरक्षनाथ (३) गहिनीनाथ (४) जालंदरनाथ (५) कानिफनाथ (६) भर्त्तरीनाथ (७) रेवणनाथ (८) नागनाथ और (९) चर्पटीनाथ :

३—एक सांप्रदायिक श्लोक१५ की सूची :—(१) गोरक्ष (२) जालंदर (३) चर्पट (४) अडवंग (५) कानीफ (६) मछिंदर (७) चौरंगी (८) रेवणक और (९) भर्त्री :

४—"हिन्दुत्व"१६ (लें० राम दास गौड़) वाली सूची :—(१) गोरखनाथ (२) ज्वालेन्द्र नाथ (३) कारिणनाथ (४) गहिनीनाथ (५) चर्पटनाथ (६) रेवणनाथ (७) नागनाथ (८) भर्तृनाथ और (९) गोपीचन्द :

---

१३. अहमदाबाद, पृ० ७।

१४. "श्री नवनाथ भक्तिकथासार" (मुंबई) से उद्धृत।

१५. गोरक्ष जालंद चर्पटाश्च अडवंग कानीफ मछिंदराद्याः।
चौरंगि रेवाणक भर्त्रि संज्ञा, भूम्यां बभूवुर्नवनाथ सिद्धा (रा० चि० ढेरे कृत "श्री गुरु गोरक्षनाथ" इत्यादि पृ० ११७ पर उद्धृत)।

१६. काशी (१९४० ई०) पृ० २४१।

५—"नवनाथ कथामृत"[१७] (गुजराती, ले० शिव शंकर शर्मा) वाली सूची —(१) मच्छेन्द्र नाथ (२) गोरक्षनाथ (३) गहिनीनाथ (४) जालंदर नाथ (५) कानिफ नाथ (६) गोपीचन्द (७) भर्तृहरि (८) चर्पटी (९) चौरंगीनाथ (१०) रेवणनाथ और (११) नाथ नाथ।

६—"भक्त मंजिरी माला"[१८] (मराठी, ले० राजाराम प्रसादी) वाली सूची —(१) सत्यामल नाथ (२) गैबीनाथ (३) गुप्तनाथ ४) उद्बोधनाथ (५) केसरीनाथ (६) शिवदिन नाथ (७) नरहरीनाथ (८) लक्ष्मणनाथ और (९) मल्हारनाथ,

७—वारकरी की महाराष्ट्रीय परम्परा[१९] की सूची —(१) आदिनाथ (२) उदयनाथ (३) मत्स्येन्द्रनाथ (४) जालधरनाथ (५) गोरखनाथ (६) चौरंगीनाथ (७) कान्हपानाथ (८) मैनावती (९) गहिनीनाथ (१०) चर्पटीनाथ और (११) निवृत्तिनाथ।

यदि हम उपर्युक्त प्रथम पाच दत्त सम्प्रदाय वाली सूचियों में आये हुए नामों पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि इनमें से सभी के अन्तर्गत जलधर नाथ, चर्पटनाथ, रेवणनाथ, एव भर्तृहरि नाम एक समान आये हैं। मत्स्येन्द्रनाथ का नाम "हिन्दुत्व" में नहीं दीख पड़ता, गोरखनाथ का नाम "योगिसम्प्रदायाविष्कृति" में नहीं पाया जाता और इसी प्रकार गहनीनाथ का नाम सांप्रदायिक श्लोक में नहीं आता और न वहां पर नागनाथ का ही कहीं पता चलता है। कानिफनाथ का नाम "नवनाथ चरित्रमु", "नवनाथ कथामृत" एव सांप्रदायिक श्लोक में आया है किन्तु "योगिसम्प्रदायाविष्कृति" तथा "हिन्दुत्व" के अन्तर्गत वह करणिनाथ का रूप ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार, गोपीचन्द का नाम भी केवल "योगिसंप्रदाया-विष्कृति", "नवनाथ कथामृत" तथा "हिन्दुत्व" में ही आया है और अडवंग का नाम एकमात्र उक्त श्लोक में मिलता है जहां चौरंगीनाथ की चर्चा "नवनाथ कथामृत" और यहां पर भी की गई दीख पड़ती है जिस कारण इनमें कई प्रकार का अन्तर लक्षित होता है।

उक्त दोनों प्रकार की सूचियों के अतिरिक्त दो अन्य ऐसी नामनालिकाएं भी उपलब्ध हैं जिन्हें मिश्रित नामों की सूची कहा जा सकता है तथा जिनमें से एक में सम्मिलित किये गये नामों की संख्या ९ की है, किन्तु दूसरी में वे २२ तक भी पहुंच गये हैं। इनमें से प्रथम का उल्लेख स्व० जोगेन्द्र नाथ भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक "हिन्दू कास्ट्स ऐंड सेक्ट्स" में

१७ अमदावाद (१९५० ई०)।

१८ रा० चिं० ढेरे कृत श्री गुरु गोरखनाथ इत्यादि, पृ० ११६ पर उद्धृत।

१९ "सार्थ ज्ञानेश्वरी" (ले० श० वा० दांडेकर प्रस्तावना)।

किया२० है और इसको ओमन (Oman) साहब ने भी अपनी पुस्तक "मिस्टिक्स, ऐसेटिक्स ऐंड सेंट्स" में उद्धृत किया है२१। दूसरी सूची का पता जेठा लाल नारायण त्रिवेदी की गुजराती पुस्तक "नव नाथ कथासागर" के आधार पर चल सकता है जिसे उन्होंने गत सन् १९६२ ई० में प्रस्तुत किया है।

१—प्रथम सूची के अनुसार :—

(१) गोरक्षनाथ (२) मत्स्येन्द्रनाथ (३) चर्पटनाथ (४) मंगलनाथ (५) घुग्गानाथ (६) गोपीनाथ (७) प्राणनाथ (८) सुरतनाथ और (९) कम्बनाथ ;

२ - द्वितीय सूची के अनुसार :—

(१) दत्तात्रेय (२) मत्स्येन्द्रनाथ (३) गोरक्षनाथ (४) गहनीनाथ (५) अडवंगनाथ (६) धर्मनाथ (७) रेवणनाथ (८) नागनाथ (९) चर्पटीनाथ (१०) निवृतिनाथ (११) ज्ञाननाथ (१२) जालंधरनाथ (१३) कानिफनाथ (१४) गोपीचन्दनाथ (१५) भर्तृहरिनाथ (१६) चौरंगीनाथ (१७) मीननाथ (१८) धुरंधरनाथ (१९) करनारिनाथ (२०) निरंजननाथ (२१) दूरंगतनाथ और (२२) गोदड़नाथ।

इन दोनों सूचियों में केवल गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ एवं चर्पटीनाथ नाम एक समान है। प्रथम के शेष ६ नामों का पता न केवल द्वितीय सूची में ही, अपितु किन्ही भी उपर्युक्त सांप्रदायिक सूचियों में नहीं चलता। इसके सिवाय द्वितीय को देखने पर हमें ऐसा भी लगता है कि इसे तैयार करते समय सूचीकार ने नाथ, दत्त एवं वारकरी संप्रदायों के प्रायः सभी विशिष्ट नामों को एक स्थल पर संगृहीत कर देने की चेष्टा की है और पुस्तक के नाम में "नव नाथ" शब्द के रहते हुए भी, ९ की संख्या को बढ़ा दिया है। यहां पर एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि मत्स्येन्द्रनाथ व मीननाथ ये दोनों ही नाम यहां पर प्रयुक्त दीख पड़ते हैं।

यदि हम इन उपर्युक्त सभी सांप्रदायिक सूचियों का एक साथ तुलनात्मक अध्ययन करना चाहें तो हमें यह पता चलते देर नहीं लगती कि उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें किसी न किसी रूप में कोई वरीयता दे दी गई जान पड़ती है। यदि हम केवल ठेठ सांप्रदायिक सूचियों पर दृष्टि डालते हैं तो हमें ऐसा लगता है कि उनमें उदयनाथ, सत्यनाथ और संतोषनाथ के नाम क्रमशः पार्वती, ब्रह्मा एवं विष्णु के लिए, देव नामों के रूप में, रख लिये गए हैं

---

२०. पृ० ४०४।
२१. पृ० १८६।

तथा उनके साथ आदिनाथ नाम को शिव के अथवा शिवनाथ के एक पर्याय रूप में स्थान दे दिया गया है। इन उदयनाथ, सत्यनाथ सन्तोषनाथ एव आदिनाथ को मानवीय रूपों में स्वीकार करने के सम्बन्ध में हमें कोई प्रामाणिक सनेत भी नहीं मिलता किन्तु दत्त सम्प्रदाय एवं वारकरी सम्प्रदाय वाली सूचियों के आधार पर विचार करते समय कोई इस प्रकार का प्रश्न उठता, प्रत्युत इस प्रकार की सूचियों के विषय में यह भी कहा जा सकता है कि इनके बनाने वालों ने उक्त देवताओं को महत्त्व न देकर उनके अभाव की पूर्ति अपने सम्प्रदायों वाले विशिष्ट प्रचारकों द्वारा ही कर देने का प्रयत्न किया है जिस कारण ऐसी तालिकाओं के अतर्गत उनकी जगह रेवणनाथ, नागनाथ, निवृत्तिनाथ, ज्ञाननाथ, शिवदिन जैसे कई नाम सम्मिलित कर लिये गए हैं। फिर भी इतना निश्चित है कि उन्होंने भी उन कतिपय नामों की उपेक्षा नहीं की है जिन्हें ठेठ साम्प्रदायिक सूचियों में विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है और यदि इन्होंने उन सभी की ओर बराबर एक समान ध्यान नहीं दिया है तो वह भी कदाचित् इसीलिए कि उनमें से अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण नामों को निकाल कर उनकी जगह अपनेवाले भर दिये जा सकते थे।

द्वितीय वर्ग वाली तांत्रिक अथवा तन्त्र प्रभावित सूचियों में से हमें ६ ऐसी मिलती हैं जिनके अतगत किसी न किसी रूप में नामनिर्देश किया गया मिलता है, किन्तु सातवीं में ऐसा कुछ नहीं पाया जाता। उन सभी का विवरण इस प्रकार है —

१—"शावरतन्त्र"२२ की सूची —(१) नागार्जुन (२) जड़भरत (३) हरिश्चन्द्र (४) सत्यनाथ (५) भीमनाथ (६) गोरक्ष (७) चर्पट (८) अवद्य (९) वैराग्य (१०) कथाधारी (११) जलधर और (१२) मलयार्जुन।

२—"तन्त्र महार्णव"२३ की सूची —(१) गोरक्षनाथ (२) जालधरनाथ (३) नागार्जुन (४) सहस्रार्जुन (५) दत्तात्रेय (६) देवदत्त (७) जड़भरत (८) आदिनाथ एव (९) मत्स्येन्द्र।

३—"तारा रहस्य"२४ की सूची —(१) वशिष्ठ (२) मीननाथ (३) हरिनाथ (४) कुलेश्वर (५) विरूपाक्ष (६) महेश्वर (७) सुख और (८) पारिजात।

४—"श्यामा रहस्य"२५ की सूची —(१) विमल (२) शृंगार (३) भीमसेन (४)

२२ "गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह", पृ० १९।

२३ वही, पृ० ४४ ५।

२४ वही, पृ० ११५।

२५ वही, पृ० २४।

सुधाकर (५) मीन (६) गोरक्ष (७) भोजदेव (८) प्रजापति (९) कुलदेव (१०) वृंत्तिदेव (११) विघ्नेश्वर (१२) हुताशन (१३) संतोष और (१४) समयानंद ;

५—"कौलावली तंत्र"२६ की सूची :—(१) विमल (२) कुशर (३) भीमसेन (४) मीन (५) गोरक्ष (६) भोजदेव (७) मूलदेव (८) रंतिदेव (९) विघ्नेश्वर (१०) हुताशन (११) समरानंद और (१२) संतोष ;

६—"कल्पद्रुम तंत्र"२७ की सूची :—(१) गोरक्ष (२) निरंजन (३) निराकार (४) निर्विकल्प (५) निरामय (६) विधि (७) विष्णु और (८) शिव ;

७—"नेपाल केटलाग"२८ वाली सूची :—(१) प्रकाश (२) विमर्श (३) आनंद (४) ज्ञान (५) सत्य (६) पूर्ण (७) स्वमा (८) प्रतिभा और (९) सुभग।

इन ७ सूचियों में से अंतिम अर्थात् केवल "केटलाग" वाली अधिकतर ऐसे नामों से ही संबद्ध जान पड़ती है जिन्हें व्यक्तिवाचक नहीं कहा जा सकता, प्रत्युत जो साधारणतः किसी दशा, स्थिति, वा गुणादि के ही परिचायक हैं। इनमें से पूर्ण एवं सुभग को तो किसी न किसी रूप में केवल विशेषण मात्र भी ठहराया जा सकता है जिस दशा में उनकी यहां पर कोई ठीक संगति नहीं बैठ पाती। इसी प्रकार उक्त ६ठी सूची वाले नामों में से भी केवल विधि, विष्णु, शिव एवं गोरक्ष ही ऐसे हैं जिन्हें या तो देव नाम अथवा नाथ नाम कहा जा सकता है। अतएव इन दोनों में से किसी के भी आधार पर सभी नवनाथों का पता चल सकना असंभव-सा है। उधर "श्यामा रहस्य" और "कौलावली तंत्र" वाली सूचियों में हमें इस बात की समानता दीखती है कि इनके अंतर्गत विमल, कुशर, भीमसेन, मीन, गोरक्ष, भोजदेव, विघ्नेश्वर, हुताशन एवं संतोष ठीक एक समान आये हैं और प्रथम का वृंत्तिदेव द्वितीय के रंतिदेव तथा, इसी प्रकार उसका समयानंद इसके समरानन्द जैसे लगते हैं और उसका कुल देव भी यहां पर मूल देव बन गया प्रतीत होता है। किन्तु प्रथम के अंतर्गत जो सुधाकर और प्रजापति नाम आये हैं वे द्वितीय में नहीं दीख पड़ते जिस कारण इनकी संख्या में भी कमी आ गई है। इसके सिवाय यहां पर यह भी उल्लेखनीय है कि इन दोनों में केवल मीन और गोरक्ष ये दो ही नाम ऐसे हैं जो नवनाथों की सूची के हैं। हां, संतोष को यदि संतोष

---

२६. वही, पृ० ७६।

२७. डा० कल्याणी मल्लिक : नाथ-सम्प्रदायेर इतिहास, दर्शन ओ साधना प्रणाली, कलिकाता १९५० ई०, पृ० ८९।

२८. द्वितीय भाग, पृ० १४९।

नाथ का कोई संक्षिप्त पर्याय मान ले तो वह भी एक सांप्रदायिक सूची वाले नाम का काम दे सकता है।

"तन्त्र महार्णव" तथा "शबर तन्त्र" वाली सूचियों में हमें गोरक्ष, जलधर, नागार्जुन एवं जड़ भरत ये चार नाम एक समान दीख पड़ते हैं और, यदि प्रथम का "सहस्रार्जुन" भी कहीं द्वितीय का 'मलयार्जुन" सिद्ध किया जा सके तो, यहां पर इस विषय में भी समानता आ जाती है। परन्तु दूसरी और प्रथम के दत्तात्रेय, देव दत्त, आदिनाथ एवं मत्स्येन्द्र को द्वितीय सूची में स्थान दिया गया नहीं दीख पड़ता और न इसके ही हरिश्चन्द्र, सत्य नाथ, भीमनाथ, चर्पटी, अवद्य, वैराग्य और कथाधारी का यहां कहीं पता चलता है। इसी प्रकार, इन दोनों को मिला देने पर भी केवल गोरक्ष, जलन्धर, नागार्जुन, मत्स्येन्द्र, आदिनाथ, सत्यनाथ, चर्पटी एवं कथाधारी ही ऐसे नाम आते हैं जो नाथों की सांप्रदायिक नामावली में भी पाये जाते हैं तथा "वैराग्य" को "वैराग्य नाथ" का रूप देने पर हम इसे भी उनके साथ जोड़ सकते तथा सबकी संख्या ९ तक बढ़ा ले जा सकते हैं। उधर "तारा रहस्य" वाली सूची की एक अपनी पृथक् विशेषता दीख पड़ती है जिस कारण उसका मेल अन्य ऐसी सूचियों के साथ नहीं खाता। उसके केवल मीन नाथ एवं विरूपाक्ष के ही दो नाम ऐसे हैं जिन्हें हमने इसके पहले नव नाथों की परिचित नामावली में भी पाया है उसके वशिष्ठ और महेश्वर का यहां कहीं पर भी पता नहीं चलता तथा उसके अन्य दो नाम अर्थात् सुख एवं पारिजात भी ऐसे हैं जिनका, नव नाथों की दृष्टि से विचार करते समय, किसी प्रकार का तुक बैठता नहीं प्रतीत होता।

इसी प्रकार, यदि हम उन अन्य उपलब्ध सूचियों की पारस्परिक तुलना करते हैं जिन्हें "८४ सिद्धों की सूची' अथवा "सिद्ध नामावली" की संज्ञा दी गई मिलती है तो वहां पर हमें ऐसे नव नाथ, अनेक सिद्धों के साथ, नाथ सिद्धों के रूप में आगये दीखते हैं, जैसे १—"ग्स्स्य व्वुम"२९ (तिब्बत के तेर्ग्युर मठ में उपलब्ध रचना) के आधार पर बनायी गई ८४ सिद्धों की सूची के अनुसार :—

(१) मीनपा (२) गोरक्षपा (३) चौरंगीपा (४) कण्हपा (५) जालंधरपा (६) चर्पटीपा और (७) कनलि (कथडिपा)।

(२)—"वर्णरत्नाकर"३० में दिये गये सिद्धों वाले ७६ नामों में उपलब्ध ऐसे नामों की सूची के अनुसार —

२९ गंगापुरातत्वांक (भागलपुर, १९३३ ई०) पृ० २२०।

३० ज्योतिरीश्वर ठाकुर (बौद्धगान ओ दोहा, पृ० ३६ पर उद्धृत)।

(१) गोरक्षपा (२) चौरंगीपा (३) काण्हपा (४) कांठलिपा (५) जालंधरपा (६) चर्पटीपा और (७) भर्तृहरि ;

३—"शिव दिन मठ संग्रह"३१ में आये हुए ७७ सिद्धनाथों में प्राप्त ऐसी नामावली के अनुसार :—

(१) चौरंगी (२) गोरखि (३) जालंधरी (४) कान (५) चर्पटी और (६) आदिनाथ।

४—"तत्त्वसार"३२ वाली अपूर्ण सिद्ध नामावली में उपलब्ध ऐसे नामों की सूची के अनुसार :—

(१) आदिनाथ (२) मछिंद्र (३) चौरंगी (४) श्री गोरक्षनाथ (५) जलंधर (६) कंथड़ि (७) काण्हु (८) चर्पटि और (९) भर्तुरि।

इस प्रकार ऐसी उपलब्ध सूचियों के आधार पर भी हमें गोरक्ष, चौरंगी, कान्ह, जालंधर, चर्पटी, कंथड़ी, भर्तृहरि, मीन और आदि नाथ के ९ नाम दीख पड़ते हैं और, इसके अनुसार भी, प्रायः उपर्युक्त परिणाम ही निकलता जान पड़ता है। निष्कर्ष यह कि यदि इस प्रकार किये गये तुलनात्मक अध्ययनों के आधार पर नवनाथों की कोई प्रामाणिक सूची तैयार करने की चेष्टा की जाय और उसमें से आदिनाथ का नाम शिव परक वा देव परक मात्र होने के कारण निकाल दिया जा सके तो, उस दशा में, शेष को हम, उन्हें प्राप्त मान्यता के अनुसार नीचे लिखे क्रम से दे सकते हैं :—

(१) मीनपा वा मत्स्येन्द्रनाथ (२) गोरखनाथ (३) जालंधरनाथ (४) चौरंगी नाथ (५) कानिफ वा कणेरी नाथ (६) चर्पटीनाथ (७) भर्तृहरि नाथ (८) कंथड़ि नाथ और (९) गहनीनाथ जिसके स्थान पर अन्य प्रकार से, गोपीचन्द का भी नाम दिया जा सकता है।

परन्तु, इतना होने पर भी, कुछ प्रश्न इन रूपों में उठाये जा सकते हैं कि नवनाथों की कल्पना, सर्व प्रथम, किस आधार पर की गई होगी? किस आधार पर अनेक नामों में से केवल ९ को ही चुन लिया गया होगा? ऐसे नामों की किसी भी सूची का किस समय से बनाया जाना आरम्भ हुआ होगा? तथा उनमें इतने अंतर का पाया जाना, किस प्रकार संभव हुआ होगा? आदि। "गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह"३३ के अंतर्गत "नाथ" को "अद्वैतो परिवर्ती निराकार साकारातीत" अर्थात् एक विलक्षण रूप दिया गया है और वहां पर कहा गया है

---

३१. रा० चिं० ढेरे : "श्री गोरक्षनाथ" आदि पृ० १२१-२ पर उद्धृत।

३२. वही, पृ० १२२-३ पर उद्धृत।

३३. गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह, पृ० ७२।

कि उनसे ही नाद एवं विन्दु के अनुसार, दो प्रकार की सृष्टि क्रमश "नाद रूपा" एवं "विन्दु रूपा" अस्तित्व में आई तथा इनमें से प्रथम 'नाद' से नवनाथ उत्पन्न हुए और "विन्दु" से सदाशिव भैरव हुए। इसी प्रकार "कदली मञ्जुनाथ माहात्म्य" से पता चलता है कि नवनाथों के नवों नाम वस्तुत "मञ्जुनाथ महेश" के ही कहला सकते हैं।३४ "षोडश नित्यार्तंत्र" में शिव इस प्रकार कथन करते दीख पड़ते हैं कि मेरे कहे हुए तंत्र का ही नवनाथों ने लोक में प्रचार किया है।३५ किसी दक्षिण की परंपरा के अनुसार तो, यह भी पता चलता है कि "नव कोटि सिद्ध" कहला कर प्रसिद्ध रसायनाचार्य भी इन नव सिद्धों के ही कुल के हैं तथा इनमें से प्रत्येक के अंतर्गत उनमें से एक-एक कोटि को उनके परिवारवत् गिनाया जा सकता है।३६ इसके सिवाय "पद्मपुराण" वाली "कपिल गीता" से हमें ऐसा लगता है कि "ये नवनाथ शंकर दत्तात्रेयादि के गुरु थे३७ तथा उधर "नवनाथ कथा-सागर" से पता चलता है कि कलियुग में, वस्तुत दत्तात्रेय की ही गणना नव नाथों के आदि गुरु में की जाती है।३८ "श्री नवनाथ भक्ति कथासार" के आधार पर ये नवनाथ, नारायण के नव नारायण स्वरूप समझ पड़ते हैं३९, किन्तु "गोरख उपनिषद्' के देखने से जान पड़ता है कि संभवतः स्वयं गोरखनाथ ही एक से नव भिन्न-भिन्न स्वरूपों में परिणत हो गए हैं।४० फिर भी इस प्रकार के कथन हमें प्रायशः पौराणिक मात्र ही लगते हैं और इनसे कोई ऐतिहासिक महत्त्व का परिणाम नहीं निकलता।

इसी प्रकार, यदि हम उपर्युक्त सारी नामावलियों के निर्माण—कालानुसार कोई निर्णय करना चाहें तो भी, हमें बहुत कुछ वैसी ही कठिनाई का सामना करना पड़ता है और इसके द्वारा भी प्रकृत प्रश्न पर कोई समुचित प्रकाश पड़ना नहीं दिखाई देता। उदाहरण के लिए जिन तांत्रिक ग्रंथों को हमने, इस प्रसंग में ऊपर उद्धृत किया है उनमें से किसी का भी रचना-काल हमें विदित नहीं है और, जहां तक वैसे सांप्रदायिक ग्रंथों में से "गोरख उपनिषद्", "गोरक्षसिद्धान्त संग्रह' अथवा "योगिसम्प्रदायानिष्कृति" के विषय में कहा जा सकता है,

---

३४ "कदली मञ्जु माहात्म्य", पृ० ६५।

३५ गो० सि० स० (पृ० १९ पर उद्धृत)।

३६ Cultural Heritage of India Vol IV P 335

३७ डा० क० मल्लिक नाथ संप्रदायेर दर्शन आदि पृ० ३२५।

३८ पृ० १८।

३९ पृ० १-२।

४० स०—डा० मल्लिक सिद्ध सिद्धान्तपद्धति पृ० ७३।

इमें इनके रचे जाने का भी कोई ऐसा निश्चित संकेत नहीं मिल पाता जिनके आधार पर यह अनुमान किया जा सके कि इनमें आई हुई विविध सूचियां अमुक समय तक बन चुकी होंगी। "कदली मञ्जुनाथ माहात्म्य" का लेखन-काल तो "१६५२ कलि संवत्सर" दिया गया दीख पड़ता है४१ जिसके आधार पर गणना करने से वह ई० पू० १४४८-९ सन् का ठहरता है। यह इतने प्राचीन समय की ओर इंगित करता है जिसे स्वीकार करने में हमें स्वभावतः पूरी हिचक होने लगती है, क्योंकि वैसी दशा में गोरखनाथ, मीननाथ, कंथड़ीनाथ, चौरंगी नाथ एवं जालंधर नाथ आदि को प्रायः प्रागैतिहासिक काल का महापुरुष मान लेना पड़ सकता है अथवा ये एक बार फिर हमारे सामने निरे पौराणिक देवादि के रूप में ही आ जाते हैं। शेष सामग्रियों में से उक्त "नवनाथ चरित्रमु" नामक तेलुगु ग्रंथ का रचना-काल प्रायः १४०० वा १४२७ ई० समझा जाता है४२ तथा अन्य ऐसी रचनाओं को भी हम अधिक से अधिक १९ वीं शती ईसवी के पहले नहीं ले जा सकते। इसके सिवाय नव नाथों की ओर कुछ संकेत कर सकने वाली डभोई दुर्ग की मूर्तियों के विषय में भी ऐसा अनुमान किया गया है कि उनका निर्माण कभी सन् १२००-१२५० ई० के आस पास हुआ होगा४३ जिस कारण यह समय भी १३ वीं शती से उधर की कोई निश्चित अवधि नहीं देता। इसी प्रकार जहां तक न्यूनाधिक निश्चित नामों की सूचियों वाले ग्रंथों के संबंध में कह सकते हैं "हठयोग प्रदीपिका" का रचना-काल अधिक से अधिक सन् १३५० ई० के पहले जाता माना गया है४४ "वर्ण रत्नाकर" के लिए सन् १३००-१३२१ ई० के आसपास का कोई समय मान लिया जा सकता है४५ तथा "सस्क्यक्कं वुम" के विषय में अनुमान किया गया है वह सन् १०९१-१२७९ ई० में वर्तमान ५ प्रधान लामा गुरुओं द्वारा रचा गया था४६ जिस कारण उसके आधार पर बनी सूची को भी इसके पहले के किसी निश्चित समय की ओर स्पष्ट रूप में सूचित करने का श्रेय नहीं दे सकते। अन्य रचनाएं इससे बहुत इधर की कही जा सकती हैं।

अतएव, सबसे प्राचीन सामग्रियां जिनमें नव नाथों का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में मिलता है वे

---

४१. पृ० ४५३।
४२. ढेरे : श्री गोरक्षनाथ आदि पृ० ११५।
४३. "नागरी प्रचारिणी पत्रिका," वर्ष ६२ (सं० २०१४) अं० २-३, पृ० १५९।
४४. P. K. Gode : Date of the Hathayaga Pradipika.
४५. बौद्ध गान ओ दोहा, पृ० २६।
४६. गंगा पुरातत्वांक, पृ० २२०।

सम्भवत १५वीं ईसवी शती से पहले की नहीं जान पड़तीं और जो इस ओर कुछ संकेत मात्र करती प्रतीत होती हैं उनका भी समय १२वीं शती के पहले जाना नहीं दीखता। इसमें संदेह नहीं कि "नव नाथ" शब्द का प्रयोग इसके पहले से भी होता आया होगा तथा इसको भी कुछ न कुछ सांप्रदायिक महत्त्व कदाचित् उसी प्रकार दिया जाता आया होगा जिस प्रकार चौरासी सिद्ध जैसे शब्दों के विषय में अनुमान किया जाता है। महानुभाव कवि दामोदर (सन् १२७२ ई० में वर्तमान) के लिए कहा गया है कि उन्होंने "नव नाथ कहे सो नाथ पंथी" का प्रयोग किया था[४७] और, यदि "गोरख बानी" के अंतर्गत संगृहीत रचनाओं को प्रामाणिक ठहराया जा सके तो वहां पर आये हुए एक पद के "नौ नाथ नै चौरासी सिद्धा" के आधार पर हम यहां तक भी कह सकते हैं कि यह शब्द उसके रचयिता के पहले से भी प्रयुक्त होता आया होगा जिस दशा में, यदि वे स्वयं गोरखनाथ ही हों तो फिर इसकी प्राचीनता और भी बढ़ जाती है। इसी प्रकार जहां तक प्रमुख नाथों के केवल ९ तक होने की बात है, हमें इसके लिए भी कोई असंदिग्ध प्रमाण नहीं मिल पाता। ९ अंक का कुछ महत्त्व, तांत्रिक साहित्य में पाये जाने वाले "नवयोनि", "नव योगिनी", "नव चक्र" अथवा 'नव मुद्रा" जैसे शब्द प्रयोगों के कारण ठहराया जा सकता है और यह भी अनुमान किया जा सकता है कि तन्त्र-पद्धति के अनुसार किन्हीं नव नाथों को कभी नव चक्रादि के विभिन्न अधिष्ठानाओं के रूप में भी स्वीकार कर लिया गया होगा। इसके सिवाय हम अधिक से अधिक यह भी अनुमान कर सकते हैं कि "नाथ योगी सम्प्रदाय" के उद्भव वाले प्रारम्भिक दिनों में कदाचित ९ ऐसे विशिष्ट प्रवर्तक हो चुके होंगे जिनके कारण पहले पहल ९ विभिन्न पद्धतियां प्रचलित हुई होंगी।

परन्तु उपर्युक्त किसी भी अनुमान को निर्विवाद रूप में स्वीकार कर लेने के लिए हमारे पास कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि नव नाथों की कल्पना भी पहले पहल सम्भवत चौरासी सिद्धों की भांति कर ली गई होगी और जिस प्रकार उनके लिए कभी कभी अनुमान किया जाता है कि वे प्रसिद्ध चौरासी आसनों के अधिष्ठाता रूप में मान्य हो गये होंगे। उसी प्रकार हम इन नाथों का भी किन्हीं इंद्रियादि का अधिष्ठाता होना मान ले सकते हैं और इतना और भी कह सकते हैं कि यहां प्रयुक्त ९ अंक की कल्पना भी तांत्रिक मतों का ही परिणाम होगी।

---

४७ महाराष्ट्र साहित्य पत्रिका (सेप्टेम्बर १९५३ ई०) पृ० २६।

अतएव, हो सकता है कि तांत्रिकों ने नव नाथों की धारणा सर्वप्रथम विभिन्न शक्तियों अथवा भौतिक पदार्थों के ही रूपों में बना ली हो और फिर महासिद्धों की उपलब्ध सूचियों में से नाथसिद्धों के नाम चुनकर, उन्हें इनकी जगह स्थानांतरित कर दिया हो तथा इसके अनंतर ऐसे नामों में परिवर्तन करने वा उन्हें बढ़ाने का भी समय आ गया हो। कम से कम इतना तो निश्चित ही है कि आज तक प्राप्त नव नाथों की सूचियों की सहायता से हम नाथ योगी संप्रदाय के उदय एवं विकास का इतिहास जान पाने में उतना सफल नहीं हो सकते।

शिल्पी—नंदलाल वसु

'बंगवासी' और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम—१८८१-१९००

प्रेमनारायण

१८८१ ई० में लार्ड रिपन द्वारा भारतीय भाषाओं से प्रतिबंध हटाने के समय किसी ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि देशी भाषाओं के समाचार पत्र शीघ्र ही स्वतन्त्रता संग्राम के प्रेरक एवं लोकमत को व्यक्त करने वाली प्रमुख संस्था हो जावेंगे। वास्तव में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट के रद्द होने के समय समाचार पत्र के विकास के लिए अभूतपूर्व अवसर विद्यमान थे। रेलों व तारों का जाल समस्त देश में बिछाया जा रहा था। इंग्लैंड व भारत के मध्य समुद्री तार लग जाने से योरोप के समाचार भी रायटर द्वारा भारत आने लगे थे। संचार साधनों के विस्तार के साथ देश में राजनैतिक उत्सुकता कुछ तो स्वतः आगयी थी और कुछ तत्कालीन विषयों, जैसे, इल्बर्ट बिल के वाद-प्रतिवाद व रूस के संभावित आक्रमण से उत्पन्न हो गयी। ऐसी स्थिति में पत्रकारिता भावों की अभिव्यक्ति और प्रचार का सशक्त माध्यम बन गई। मध्यम वर्ग का व्यक्ति भी पत्र को निकाल सकता था, हस्तचालित मुद्रण यंत्र बहुत व्यय साध्य न थे और वर्तमान युग की मुद्रण, प्रकाशन व समाचार संकलन संबंधी विशिष्ट तकनीकी सेवाओं या संस्थाओं का विकास नहीं हुआ था। अतएव बहुत से विचारशील भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में आगए। वे अपने पत्रों के स्वामी, संपादक, मशीनमेन, और प्रूफरीडर स्वयं ही होते थे।[1] परिणाम यह हुआ कि समाचार पत्रों की संख्या और उनके पाठकों में इतनी वृद्धि हुई कि स्वयं वायसराय को भी आश्चर्य हुआ। वायसराय लार्ड डफरिन ने भारत मंत्री लार्ड क्रास को भेजे अपने एक पत्र में उच्च प्रशासकीय अधिकारियों की समिति की वह रिपोर्ट भेजी जिसमें सरकार का ध्यान समाचार पत्रों के अपूर्व विकास की ओर आकर्षित करते हुए

---

1 'बंगवासी' की स्थापना १८८१ में जोगेन्द्रनाथ बोस ने की थी जो पहले 'साधारणी' नामक साप्ताहिक पत्रिका के संपादक विभाग में रह चुके थे। 'बंगवासी' के संपादक कृष्णचंद्र बनर्जी थे जो अपने पद पर १०-१२ वर्षों तक रहे। यह पत्र कलकत्ते से बंगला साप्ताहिक के रूप में निकलता था और इसका मूल्य एक पैसा था। १८९२ से 'हिन्दी बंगवासी' भी प्रकाशित होने लगा।

विवेच्य समय (१८८१-१९०० ई०) की 'बंगवासी' की मूल प्रतियां उपलब्ध नहीं हैं पर 'रिपोर्टस् आन नेटिव न्यूजपेपर्स' में भारतीय समाचारपत्रों के महत्वपूर्ण अंशों का अंगरेजी रूपान्तर उपलब्ध है। ये रिपोर्टें उच्च अंगरेज अधिकारियों के अवलोकनार्थ तैयार की जाती और इसके लिए अनुवादक का अलग विभाग था। ये रिपोर्टें नेशनल आर्काइव्ज आफ इंडिया नई दिल्ली में प्राप्त हैं।

लिखा गया था कि—पिछले दस वर्षों में समाचार पत्रों की संख्या १८० से ४५० तक पहुंच गयी है। उनकी प्रकाशित प्रतियां तो लगभग ढाई लाख हैं पर यह नहीं समझना चाहिए कि उनका प्रभाव केवल ग्राहकों पर ही है। ये समाचार पत्र एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को पढ़ने के लिए दिए जाते हैं, पाठकों द्वारा श्रोताओं को ज़ोर ज़ोर से पढ़ कर सुनाये जाते हैं फिर यही पाठक व श्रोता छपे हुये विवरण दूसरे व्यक्तियों के संमुख दुहराया करते हैं। जब जनता को उत्तेजित करने वाले प्रश्नों की चर्चा न हो रही हो तब इन समाचार पत्रों का प्रभाव अनुमानतः बीस लाख व्यक्तियों पर पड़ता है, पर अब आये दिन इस प्रकार के विषयों की चर्चा तीखी भाषा में की जारही है…इन समाचार पत्रों का प्रभाव बहुत व्यापक और विस्तृत हो गया है।[२] ब्रिटिश साम्राज्यवाद के समर्थक 'पायनियर' ने भी अपने एक अग्रलेख में यह चिन्ता व्यक्त की कि देशी भाषाओं के समाचार पत्रों का प्रभाव सुदूर अंचलों में फैल रहा है और सायंकाल को ये अखबार जन समूह को गांव के अध्यापक या पटवारी द्वारा पढ़ कर सुनाये जाते हैं।[३] इसके विपरीत अंगरेजी के समाचार पत्रों की प्रतियां भी कम संख्या में मुद्रित होतीं तथा उनके पढ़ने-सुनने का ढंग भी सार्वजनिक न था।

समाचार पत्रों द्वारा लोकमत की अभिव्यक्ति तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों के प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में यदि 'बंगवासी' के वितरण के आंकड़े देखे जावें तो पिछली शताब्दी के अंतिम दो दशकों को 'बंगवासी युग' कहा जा सकता है। १८८१ में 'बंगवासी' की स्थापना के समय देश का सबसे अधिक प्रचलित पत्र बंगला साप्ताहिक 'सुलभ समाचार' था (४,००० प्रतियां) जिसकी स्थापना केशवचंद्र सेन ने की थी। पर दो ही वर्षों में 'बंगवासी' ने भारतीय समाचार पत्रों के वितरण में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया, जब की उसकी मुद्रित प्रतियां ८,५०० पर पहुंच गयीं (द्वितीय स्थान पर 'सुलभ समाचार' का वितरण ३,००० था)। १८८५ का वर्ष कांग्रेस की स्थापना के कारण महत्वपूर्ण वर्ष गिना जाता है। यही वर्ष

---

२. होम (पब्लिक) प्रोसीडिंग्ज संख्या ३१९, जनवरी १८९०। आख्यायिका प्रस्तुत करने वाले अधिकारी थे जी० चेस्ने, सी० यू० एचिसन, जे० वेस्टलैंड। लार्ड डफरिन द्वारा लार्ड क्रास को लिखा पत्र दिनांक नवंबर ६,१८८८। (नेशनल आर्काइव्ज आफ इंडिया नई दिल्ली जिसे आगे एन० ए० आई० कहा गया है में प्राप्त)।

३. 'पायनियर' नवंबर १६, १८९३ (मूल प्रति पायनियर प्रेस लायब्रेरी लखनऊ तथा नेशनल लायब्रेरी कलकत्ता में प्राप्त) 'पायनियर' उन दिनों इलाहाबाद से निकलता था उसके संपादक राबर्ट हेन्समैन व व्यवस्थापक जार्ज एलन का राजकीय अधिकारियों से घनिष्ट संपर्क था अतएव इस पत्र की सम्मतियों को अप्रत्यक्ष रूप से सरकार की ही आवाज़ माना जाता।

'बगवासी' के असाधारण विकास का भी वर्ष है। फर्वरी १८८५ में 'बगवासी' की मुद्रित प्रतियाँ १२,००० थीं, पर सितबर मास में यह सख्या २०,००० पर पहुच गयी। द्वितीय स्थान बगाली 'दैनिक' का था जिसको भी 'बगवासी' के सस्थापक जोगेन्द्रनाथ बोस निकालते थे।४ तृतीय स्थान कलकत्ते के हिन्दी साप्ताहिक 'उचित वक्ता' का था पर उसकी मुद्रित प्रतियों की सख्या केवल ४,५०० थी जो 'बगवासी' के चौथाई से भी कम थी।५ १८९२ से 'बगवासी' हिन्दी में भी प्रकाशित होने लगा। 'हिन्दी बगवासी' के सपादक प्रसिद्ध साहित्यकार बालमुकुन्द गुप्त थे जिनको ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कड़ा लिखने के कारण कांग्रेस समर्थक 'हिन्दुस्थान' (कालाकांकर) छोड़ने पर विवश होना पड़ा था।६ 'हिदी बगवासी' ने भी शीघ्र ही हिन्दी समाचार पत्रों में शीर्षस्थ स्थान प्राप्त कर लिया। १८९४ में उसकी मुद्रित प्रतियों की सख्या १०,००० थी जो देश के समस्त हिदी साप्ताहिकों की मुद्रित प्रतियों के लगभग बराबर थी।७ देश के समस्त समाचार पत्रों में प्रथम था 'बगवासी' और द्वितीय था 'हिन्दी बगवासी'। बगाल उस समय राजनैतिक क्षेत्र मे अन्य प्रांतों से आगे था और यह बहुधा स्वीकार किया जाता कि बगाल जो आज सोचता है वह शेष भारत दूसरे दिन, अतएव बगला व हिन्दी भाषी क्षेत्रों में 'बगवासी' का प्रभाव प्रत्यक्ष था और शेष भागों में अप्रत्यक्ष।

'बगवासी' का प्रचलन यह भी सिद्ध कर देता है कि राजनैतिक सजगता केवल अगरेजी पढ़े वर्ग तक ही सीमित न थी। यदि अगरेजी भाषा के पत्रों की तुलना 'बगवासी' से की जाए तो वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है। १८८५ में भारतीयों द्वारा प्रकाशित प्रमुख समाचार

---

४ बोस और मोरेनो 'ए हड्रेड इयर्ज़ आफ बेंगाली प्रेस' कलकत्ता १९२०।

५ भारत के समाचार पत्रों के वितरण आकड़े १८८५ ई० के सबध में उपलब्ध हैं— होम १८८६ (पब्लिक) बी—प्रोसीडिंग्ज़, मार्च सख्या १२५ १६२ (नै० आ० इ)।

६ फर्वरी १८९१ में राजा रामपाल सिह ने जो 'हिन्दुस्थान' के स्वामी थे, बालमुकुन्द गुप्त को यह कह कर नौकरी से हटा दिया कि उनके लेख आवश्यकता से अधिक सरकार विरोधी हैं। 'हिन्दुस्थान' से हट कर वे 'हिन्दी बगवासी' के सह सपादक बने और वहा ६ वर्ष तक काम किया। फिर वे 'भारत मित्र के सपादक हुए और जन्मपर्यन्त वहीं रहे (बनारसी दास चतुर्वेदी 'युग निर्माता पत्रकार बालमुकुन्द गुप्त', कादम्बिनी, नवबर १९६५ पृष्ठ ८६)।

७ उन्नीसवीं शताब्दी में देश के अधिकांश पत्र साप्ताहिक थे, हिन्दी का दैनिक केवल एक 'हिन्दुस्थान' (कालाकांकर) था।

पत्रों के वितरण आंकड़े इस प्रकार हैं८—सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का 'बंगाली'—२,००० ; सरदार सुरजीत सिंह मजीठिया द्वारा स्थापित व शीतलाकांत चटर्जी द्वारा संपादित लाहौर का 'ट्रिब्यून'—३,८५० ; मोतीलाल व शिशिरकुमार घोष की 'अमृत बाजार पत्रिका'—२,२३६ ; राय क्रिस्टोदास पाल द्वारा संस्थापित 'हिन्दू पेट्रियट'—१,१०८ ; महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित व मनमोहन घोप व सत्येन्द्रनाथ टैगोर द्वारा संपादित 'इंडियन नेशन'—१,५०० ; 'इंडियन ईको' जो कलकत्ते से एक पारसी द्वारा संपादित होता—४,०००। इनके अतिरिक्त प्रमुख पत्रकार राबर्ट नाइट भी भारतीयों की राजनैतिक आकांक्षाओं से सहानुभूति रखते थे और उनके 'स्टेटसमैन' की मुद्रित प्रतियां थीं ३,५००। इन सभी अंगरेजी पत्रों की सम्मिलित मुद्रित प्रतियां अकेले 'बंगवासी' से कम थीं, उनका प्रभाव क्षेत्र तो और भी कम क्योंकि उन्हें पढ़ने वाले व्यक्ति बहुधा उनके ग्राहक ही होते।

आज तो राजनैतिक दल व निर्वाचित विधान सभाएँ जनमत व्यक्त करने के लिए समाचार पत्रों की समकक्षी हैं, पर जब व्यवस्थापिका सभाएँ केवल सरकारी संस्थाएँ थीं और राजनैतिक दलों में कांग्रेस का तो सविधान भी १८९९ तक नहीं था, तो देश का राजनैतिक स्पंदन समाचार पत्रों में ही प्रतिध्वनित होता था। बहुधा यह विश्वास किया जाता है कि कांग्रेस प्रारंभ से ही देश की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती रही है और उसको देश के अधिकांश व महत्वपूर्ण वर्ग ने अपना समर्थन प्रदान किया।९ वास्तविकता यह है कि कांग्रेस के पहले बीस वर्षों में देश के सर्वाधिक लोकप्रिय पत्र 'बंगवासी' ने कांग्रेस की अंगरेजियतपरस्ती, लक्ष्य हीनता तथा वाचालता का डट कर विरोध किया। वैसे कांग्रेस समर्थक पत्रों की कमी न थी परन्तु उनमें से अधिकांश का कांग्रेस समर्थन व्यावहारिक कारणों पर आधारित था क्योंकि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों में कांग्रेस उस समय के ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन व इंडियन एसोसिएशन से अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण थी और ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों को कांग्रेस की मांगों से अधिक दिए जाने की आशा भी न थी। यह उल्लेखनीय है कि इन सभी कांग्रेस समर्थक पत्रों ने भी 'बंगवासी' के कांग्रेस विरोध को चुनौती नहीं दी वरन् 'बंगवासी'

---

८. होम १८८५ (पब्लिक) बी—प्रोसीडिंग्ज़, मार्च १२५-१६२ 'रईस और रय्यत' जिसका संपादन डाक्टर शंभुचंद्र मुकर्जी करते थे, एक प्रतिष्ठित पत्र था पर उसके संपादक ने वितरण के आंकड़े सरकार को बताना अस्वीकार कर दिया अतएव वे उपलब्ध नहीं हैं।

९. उदाहरण के लिए डा० रामरतन भटनागर का मत है कि वे समाचार पत्र जिन्होंने कांग्रेस का विरोध किया, महत्वहीन थे ('दी राइज़ एण्ड ग्रोथ आफ़ हिन्दी जरनलिज्म' इलाहाबाद १९४७ पृष्ठ ७६७)।

की भांति वे भी अंगरेजों के क्रौल फ़ेल के क़ायल न थे। उत्तर भारत के कांग्रेस समर्थक पत्रों में लखनऊ का 'हिन्दुस्तानी' व कालाकांकर का 'हिन्दुस्थान' कांग्रेस के मुखपत्र कहे जा सकते थे, उनके संस्थापक कांग्रेस के स्तम्भ थे तथा इन पत्रों के लेख भी प्रतिभापूर्ण होते थे[१०] परन्तु इनमें से प्रत्येक पत्र की मुद्रित प्रतियों की संख्या लगभग ५०० ही रही।

'बंगवासी' जैसे प्रचार माध्यम का कांग्रेस के प्रारंभिक १५ वर्षों तक उसके नेतृत्व व नीतियों का सिद्धान्ततः विरोध अत्यंत अर्थपूर्ण तथ्य है। इससे उस उग्रता का कारण ज्ञात हो जाता है जो वर्तमान शताब्दी प्रारंभ होते ही भारतीय राजनीति में परिलक्षित होती है और जिसके फलस्वरूप देश के उग्र नवयुवक बलप्रयोग द्वारा विदेशी शासन समाप्त करने के लिए जुट गए और स्वयं कांग्रेस १९०७ के सूरत अधिवेशन में दो टुकड़ों में बंट गयी। यह धारणा भ्रमपूर्ण है कि कांग्रेस की प्रारंभिक छोटी छोटी मांगों की सरकार द्वारा अवहेलना किए जाने के फलस्वरूप भारत में राजद्रोह की भावना तीव्र हुई।[११] कांग्रेस की स्थापना से पूर्व ही ब्रिटिश शासन के वास्तविक रूप को भारतीय भाषाओं के पत्रों में प्रस्तुत किया जा रहा था और समस्त देश में व्याप्त असंतोष उद्वेलन का रूप धारण कर रहा था। दूरदर्शी ए० ओ० ह्यूम ने इस आपत्तिजनक स्थिति को नियंत्रित करने के लिए ही पढ़े लिखे भारतीयों की संस्था कांग्रेस-बनायी।[१२] पर ह्यूम द्वारा स्थापित, ग्रेडला, वेडरबर्न द्वारा प्रशासित, व अंगरेजियत में पले भारतीयों से गठित कांग्रेस की धज्जियां 'बंगवासी' ने उड़ानी प्रारंभ कर दी और ऐसा करने से इस प्रमुख पत्र की लोक प्रियता में कहीं कमी नहीं आयी।

---

१० 'हिन्दुस्तानी' उर्दू साप्ताहिक था और उसके संपादक मुंशी गंगा प्रसाद वर्मा ने बंबई की प्रथम कांग्रेस में भाग लिया था। बाद में उन्होंने एक अंग्रेजी साप्ताहिक 'ऐडवोकेट' भी निकालना प्रारंभ किया।

'हिन्दुस्थान' के संस्थापक राजा रामपाल सिंह थे जिनका नाम कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं में था।

११ उदाहरण के लिए एस० आर० मेहरोत्रा ने भारतीयों के इंगलैंड विरोधी होने का कारण यह ठहराया है कि कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित व वायसरायों द्वारा अपने गोपनीय पत्रों में अनुमोदित मांगों जैसे व्यवस्थापिका सभाओं को स्थापना, सरकारी सेवाओं के भारतीयकरण इत्यादि-को अदूरदर्शी इंगलैंड की सरकार ने स्वीकार नहीं किया।

('इंडिया एण्ड दी कामनवेल्थ' लंदन १९६५ पृष्ठ २०-३०)।

१२ इलाहाबाद में अप्रेल ३०-१८८८ को दिया ह्यूम का भाषण (सेलेक्ट डाक्यूमेंटस आन दी हिस्ट्री आफ इंडिया एण्ड पाकिस्तान जिल्द ४ लंदन १९६४ पृष्ठ १४१-१४३)।

'बंगवासी' के राजनैतिक दृष्टिकोण का आधार वह उत्कट भारतीयता है जो उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक आंदोलनों द्वारा समस्त देश में प्रवाहित की गयी थी पर जिसके फलस्वरूप राष्ट्रवादी विचारधारा दो वर्गों में बंट गई थी। पहला वर्ग तो योरोप की उन्नति से प्रभावित होकर पश्चिमी आदर्शों और तौर तरीकों को नवीन भारत के पुनरुत्थान में प्रयुक्त करना चाहता था। प्रजातंत्र व उदारवादी विचारों ने योरोप की राजनीति को नया मोड़ दे दिया था। उस युग का प्रमुख उदारवादी नेता व महान वक्ता ग्लैडस्टन, इंगलैंड का प्रधानमंत्री रह चुका था। अपनी आदर्शवादी सहजवृत्ति के कारण वह अपने ही देश की सरकार को आयरलैंड को संतुष्ट करने को बाध्य कर रहा था तथा अवकाश ग्रहण करने पर भी आर्मीनिया में हो रहे तुर्क अत्याचारों ने उसे इतना उत्तेजित कर दिया कि उसकी ओजस्वी वाणी के कारण आर्मीनिया के पक्ष में विश्व जनमत उत्पन्न हो गया। इंगलैंड में शिक्षित-दीक्षित कांग्रेस के नेता इंगलैंड के साथ अपने देश के संपर्क को सौभाग्यपूर्ण संयोग मानते। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के अनुसार, "अंगरेजी सभ्यता संसार में सर्वोच्च हैं—इंगलैंड और भारत की एकता का चिह्न है। यह सभ्यता भारतवासियों के प्रति अपूर्व आशीर्वादों और प्रसादों से परिपूर्ण है और अंगरेजों के सुनाम को अपूर्व ख्याति दिलाने वाली है।"[१३] दूसरी विचारधारा में वे व्यक्ति थे जिनमें पश्चिमी सभ्यता के प्रति वितृष्णा थी और वे भारत की किसी भी संस्था अथवा प्रथा की आलोचना सुनने को तैयार न थे क्योंकि उनकी दृष्टि में समस्त भारतीय विश्वास, रीतिरिवाज व परंपरायें वरेण्य तथा लाभदायक थीं। 'बंगवासी' इसी विचारधारा के परिपोषण द्वारा देश की बहुसंख्यक जनता की संवेगात्मक भावनायें प्रतिबिंबित करता जिनके अनुसार अंगरेजी शिक्षा अभिशाप, समुद्रयात्रा पाप, तथा बालविवाह व जातिप्रथा दोषहीन थीं। भारतीयों द्वारा चाय-बिस्कुट सेवन, नाम के आगे मिस्टर लगवाने की चाह, पतलून नेकर पहनने की प्रवृत्ति से 'बंगवासी' को चिढ़ थी। उस अंगरेजी सभ्यता को वह हेय व लज्जास्पद मानता जिसके प्रवर्तकों ने राजनैतिक क्षेत्र में एशियाई देशों की निर्बलता से लाभ उठाकर उनकी स्वतंत्रता छल कपट से छीन रखी थी, व धार्मिक क्षेत्र में जिसके मिशनरी भारत के देवी-देवताओं, मंदिरों, घाटों का खुले आम अपमान कर रहे थे और धमकियों व प्रलोभन द्वारा निरीह जनता का धर्म परिवर्तन कर रहे थे।

'बंगवासी' का आक्रोश कांग्रेस की नीतियों और उसके नेताओं, दोनों ही कारणों से था।

---

१३. पट्टाभि सीतारमैया : 'कांग्रेस का इतिहास'; भाग १ हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा हिन्दी अनुवाद नई दिल्ली १९४२ पृष्ठ ८५।

कांग्रेस को 'बंगवासी' बाबुओं का समुदाय और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को 'आदर्श' या 'मॉडलबाबू' कह कर पुकारता१४ तथा आनन्दमोहन बोस, राजा राम पाल सिंह, वोमेशचन्द्र बनर्जी, दादाभाई नौरोजी के अंग्रेजी तौर तरीकों पर खूब छींटे कसता१५ और इन 'काली चमड़ी के गोरे मन' वाले व्यक्तियों द्वारा भारत के पक्षपोषण को 'स्वांग' बताता। कांग्रेस अधिवेशन को वार्षिक पिकनिक, तथा गवर्नरों, वायसरायों को प्रीतिभोज देनेवाले कांग्रेसियों के जनता के प्रतिनिधि होने के दावे 'बंगवासी' के अनुसार बेईमानीपूर्ण थे।१६ १८८७ में सम्राज्ञी विक्टोरिया की जुबली के समय नेतागीरी का दम भरने वाले लोग जब राजभक्ति प्रदर्शित करने में एक दूसरे से होड़ लगा रहे थे तो 'बंगवासी' इस अवसर पर सम्मान वितरण समारोह को जुजुनगो (जुजु = बालों का जुँआ) कह रहा था।१७

ब्रिटिश शासन के स्वरूप के विषय में 'बंगवासी' के विचार घोर वास्तविकता पर आधारित थे। जैसे, हजारों मील दूर शीतप्रधान इंगलैंड के निवासी धूपगर्मी की परवाह किए बिना यदि भारत आते हैं तो उनका लक्ष्य अपना व अपने देश का हितसाधन है, २७ हजार गोरे, २७ करोड़ कालों पर शासन कर रहे हैं, एक वर्ग शासक है दूसरा दास, एक शोषक दूसरा शोषित। अतएव समानता, नैतिकता, स्वतन्त्रता, उदारवादिता की दुहाई देना व्यर्थ है।१८ कानून की पकड़ से बचने के लिए 'बंगवासी' अन्य भारतीय भाषाओं के पत्रों की भांति अपनी राजभक्ति का आश्वासन देता रहता पर इसका आधार उसके अनुसार अंगरेजों की न्यायपरता नहीं उनकी सैनिक शक्ति व भारतीयों की विवशता थी।१९ देश के उत्थान के लिए 'बंगवासी' संगठन, आत्मनिर्भरता, संकल्प व संयम जैसे गुणों के विकास की आवश्यकता बताता, सात समुद्र पार की सरकार पर आशा केंद्रित करना वह हाथ से चन्द्रमा पकड़ने जैसा कहता।२० भारतीय डेलीगेशनों को इंगलैंड की जनता के समक्ष भाषण देने के लिए कांग्रेस द्वारा धन इकट्ठा किया जाता, 'बंगवासी' इसे धन व शक्ति का अपव्यय बताते हुए लिखता कि भारत के लिए सभी

---

१४ 'बंगवासी', दिसंबर १, १८९४ (रिपोर्ट बंगाल १८९४)।

१५ 'बंगवासी', अप्रैल २१, १८९४ (रिपोर्ट बंगाल १८९४)।

१६ 'बंगवासी', अगस्त २, १८९० (रिपोर्ट बंगाल १८९०)।

१७ 'बंगवासी', फर्वरी १२, १८८७ (रिपोर्ट बंगाल १८८७)।

१८ 'बंगवासी', मई १८, १८९५ (रिपोर्ट बंगाल १८९५)।

१९ 'बंगवासी', जुलाई ३१, १८९७ (रिपोर्ट बंगाल १८९७)।

२० 'बंगवासी', जनवरी १, १८८७ कलकत्ता कांग्रेस के प्रस्तावों की पैरोडी प्रकाशित हुई (रिपोर्ट बंगाल १८८७)।

अंगरेज और उनके राजनैतिक दल एक से हैं। दादाभाई नौरोजी के १८९२ में हाउस आफ़ कामन्स में निर्वाचित हो जाने पर कुछ क्षेत्रों ने इसे भारत के लिए अत्यंत भाग्यशाली माना था पर 'बंगवासी' ने प्रसन्नता व्यक्त करने वालों को चेतावनी देते हुए कि अकेला व्यक्ति पार्लियामेंट में करेगा भी क्या जब कि इंगलैंड में निर्वाचित होनेवाला कोई भी भारतीय अपने देश के तौर तरीक़ों को पहले ही छोड़ चुका होगा।२१ प्रशासकीय सेवाओं में अधिक भारतीयों को नौकरी दिए जाने की मांग करने वालों से 'बंगवासी' पूँछता कि क्या सरकारी नौकरी ही स्वतंत्रता है। इसी प्रकार भारतीय मैजिस्ट्रेटों को गोरे अभियुक्तों का मुकदमा सुनने का अधिकार चाहने वालों से 'बंगवासी' कहता कि भारतीय न्यायाधीश स्वतंत्र देश के नागरिकों का अभियोग सुन लेने मात्र से स्वयं स्वतंत्र नहीं हो जावेंगे।२२

कांग्रेस की आलोचना करते समय 'बंगवासी' ने कुछ रचनात्मक सुझाव भी दिये। विदेशी वस्तुओं के वहिष्कार के संबंध में 'बंगवासी' ने अनवरत लिखा। बंग-भंग के समय जिस स्वदेशी ने आंदोलन का रूप ले लिया उसके पक्ष में भावात्मक व आर्थिक तर्क भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों द्वारा पहले से दिए जा रहे थे। १८८५ की पहली कांग्रेस के प्रस्तावों व कार्यों पर टिप्पणी करते हुए 'बंगवासी' ने लिखा कि देशभक्ति का दावा करने वाले व्यक्तियों को पहले देश में ही बनीं चीज़ों का प्रयोग करना चाहिए।२३ भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों का प्रमुख लक्ष्य ही 'बंगवासी' के अनुसार अपने देशवासियों में वह आत्म सम्मान की ज्वाला प्रज्वलित करना था जिससे वे स्वदेश में बनी वस्तुओं का ही प्रयोग करने के लिए दृढ़ संकल्प हों।२४ अंग्रेजी सरकार को प्रतिवेदन देकर भारत के आर्थिक शोषण को समाप्त करने वालों को 'बंगवासी' देश के निर्धन जुलाहों की दशा सुधारने के सेवा में कोई कार्यक्रम बनाने को कहता जिससे बंगाल के दस लाख जुलाहे बेरोज़गारी से बच सकें।२५ १८८५ में जब कांग्रेस के डेलिगेट भारत की दुर्दशा के संबंध में विचार विनिमय के लिए इकट्ठे हो रहे थे और सरकार देश की भौतिक समृद्धि के आंकड़े प्रकाशित कर रही थी, तो 'बंगवासी' का संपादक वर्ग शीत वर्षा तथा कार्य में व्यतिक्रम की चिन्ता किए बिना गांव-गांव जाकर दुर्भिक्ष

---

२१. 'बंगवासी', जुलाई २, १८९२ (रिपोर्ट बंगाल १८९२)।
२२. 'बंगवासी', दिसंबर १, १८९४ (रिपोर्ट बंगाल १८९४)।
२३. 'बंगवासी', जुलाई ३, १८८६ (रिपोर्ट बंगाल १८८६)।
२४. 'बंगवासी' नवंबर ९,१८८९ (रिपोर्ट बंगाल १८८९)।
२५. 'बंगवासी' फ़र्वरी १२,१८८७ (रिपोर्ट बंगाल १८८७)।

सहवास वय विधेयक के प्रणेताओं व निर्माताओं ने भारतीय जनता के स्वाभिमान व उसे व्यक्त करनेवाले समाचार पत्रों की शक्ति समझने म बड़ी भूल की। कानून मेम्बर सर ऐन्ड्रयू स्कोबेल ने विधेयक प्रस्तुत करते समय सामाजिक कुरीतियों की चर्चा की और कहा कि मेरा व्यक्तिगत मत तो विवाह वय को १४ वर्ष तक बढ़ाने का था पर जनता के पिछड़ेपन के कारण अभी यह सीमा १२ वर्ष ही रखी जारही है। सर स्कोबेल के वाक्यों ने भारतीयों के आत्मगौरव को झकझोर दिया और योरोप के कलहपूर्ण पारिवारिक जीवन व कलुषित यौन सबधों का हवाला देते हुए सरकार को करारे उत्तर दिए जाने लगे। विधेयक को धर्म विरुद्ध घोषित करने के लिए वे पडित आगे आगये जिन्हें सरकार ही पहले महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित कर चुकी थी।३२ सभावित सकटों की कल्पना ने वातावरण को उत्तेजनापूर्ण बना दिया, जैसे प्रथम रजोदर्शन के समय गर्भाधान सस्कार न होने पर उस स्त्री के पुत्रों द्वारा तर्पण का फल न मिलने के सदर्भ में अनेक उदाहरण दिये जाते जिनमें १२ वर्ष से पहले ही लड़कियां माताएँ बन जाती थी। बिल के पक्ष में सरकार का तर्क स्वस्थ सामाजिक प्रथाओं की स्थापना करना था, परन्तु इसके उत्तर में एक्ट के कारण होनेवाले पुलिस के अत्याचारों, अदालत में बहू-बेटियों की हाज़िरी और जिरह, बड़ी आयु की वधुओं के आने से सयुक्त परिवार में अशान्ति तथा अधिक आयु तक अविवाहित रहने से बालिकाओं के चरित्रभ्रष्ट होने का भय प्रकट किए जाते। भारतीयों के प्राचीन इतिहास एव सस्कृति की प्रशसात्मक व्याख्या सर हेनरी मेन व व्हीलर जैसे विद्वान अग्रेजों ने की थी३३, अतएव 'बगवासी' जैसे पत्रों ने इस बिल को अपमान जनक ही नहीं वरन् देश को सस्कृति को नष्ट करने की सुनिश्चित योजना का प्रथम चरण बताया, अन्यथा जो सरकार गोरों द्वारा सहस्रों अबलाओं के सतीत्व भग की आये दिन होने वाली घटनाओं पर विचलित न होती थी वह एक फूलमणि की मृत्यु से ही प्रभावित क्यों हो जाती, और जिस कांग्रेस को उसने देश का प्रतिनिधि स्वीकार ही नहीं किया उसके नेताओं की मांग को देश की आवाज़ क्यों मान लेती।

विदेशी शासन के प्रति अनास्था व अविश्वास को देशव्यापी बनाने में विधेयक विरोधी यह आंदोलन अत्यत कारगर राजनैतिक अस्त्र सिद्ध हुआ। भारत के बहुसख्यक धर्मभीरु वर्ग

---

३२ 'बगवासी' जनवरी १७, १८९१ में ६ महामहोपाध्यायों के मत दिए गए जिनमें विधेयक को हिन्दू धर्म विरोधी बताया गया था (रिपोर्ट बगाल १८९१)।

३३ सर हेनरी मेन की पुस्तक 'एन्शेन्ट लाज़' १८६१ में और व्हीलर द्वारा रचित पांच भागों में प्रकाशित भारत का इतिहास १८६१-१८७२ के बीच प्रकाशित हुए।

को स्वतंत्रता संग्राम में भागीदार बनाने में इस आंदोलन का प्रमुख योगदान है। कलकत्ते में इस्प्लानेड से रेसकोर्स तक फ़र्वरी २५, १८९१ को जो विशाल जनसमूह एकत्र हुआ वैसा लोगों ने उससे पहले कभी न देखा था। मराठे, मारवाड़ी, उत्तर भारतीय तथा पंजाबियों सहित उसमें लगभग दो लाख व्यक्तियों ने भाग लिया और इसमें विधेयक विरोधी नारे लगाए गए।३४ लाहौर में प्रति सायंकाल लाहौरी गेट पर विशाल सभाओं में विधेयक के संबंध में भाषण होते जिनका विशद विवरण देने के लिए एक बंगाली समाचार पत्र ने विशेष संवाददाता भेज रक्खा था।३५ विचारशील व्यक्तियों ने परिवर्तित परिस्थितियों को भांप लिया, स्वयं 'बंगवासी' जिसने इस आंदोलन का नेतृत्व किया था, लिखा—'यह किसने सोचा था कि मुर्दा फिर जीवित हो जावेगा और जीवित ही नहीं अपने पैरों पर खड़ा भी होगा और उन्हें चलाएगा भी। यह कौन जानता था कि लाखों शवों में सहसा जीवन स्पंदन करने लगेगा।'३६ अनेक पत्रों ने उस देशव्यापी एकता की ओर संकेत किया जो इस बिल के विरोध के कारण भिन्न २ भागों और वर्गों को एक सूत्र में बांध रही थी३७ (अनेक मुसलमान पत्र भी इस विधेयक का विरोध करने में पीछे न थे)।३८ कलकत्ते के समाचार पत्र 'प्रतिकार' ने स्पष्ट लिखा कि जो कार्य नेशनल कांग्रेस अथक परिश्रम और महान धनराशि व्यय करने पर भी न कर पाई वह जनता ने स्वयं कर दिखाया।३९ अंग्रेज प्रशासक भी इस संकट से अपरिचित न थे। सी० एस० बेली जो कई वर्षों तक भारत सरकार के ठगी, डकैती विभाग के अध्यक्ष रहे थे और जो उस समय इंडिया काउन्सिल के सदस्य थे, ने वायस राय को लिखे पत्र में यह विश्वास प्रकट किया कि शासन विरोधी वर्ग धर्म की आड़ लेकर कार्य कर रहा है।४० वायसराय ने भी अपनी

---

३४. इस मीटिंग का विशद विवरण कलकत्ते से प्रकाशित पत्रों में दिया गया था (रिपोर्ट बंगाल मार्च १८९१)।

३५. खैर ख्वाहा-ए-काश्मीर, मार्च १, १८९१ (रिपोर्ट पंजाब १८९१)।

३६. 'बंगवासी', फ़र्वरी २७, १८९१ (रिपार्ट बंगाल १८९१)।

३७. सुरभि औ पताका, फ़र्वरी २७, १८९१ (रिपोर्ट बंगाल १८९१) कैसर उल अख़बार मार्च ४, १८९१ (रिपोर्ट पंजाब १८९१)।

३८. अहमदी (कलकत्ता), मिहिर औ सुधाकर (कलकत्ता) व पटे खां (लाहौर) इस विधेयक के विरोधी थे।

३९. 'प्रतिकार' अप्रेल ३, १८९१ (रिपोर्ट बंगाल १८९१)।

४०. पत्र दिनांक मार्च २०, १८९१ (रिपोर्ट बंगाल १८९१) (लैंसडाउन करेस्पांडेन्स, माइक्रोफिल्म एन० ए० आई० में उपलब्ध)।

गोपनीय टिप्पणी में लिखा कि भारतीय भाषाओं के पत्र नियोजित ढंग से जनमत को राजद्रोह की दिशा में प्रेरित कर रहे हैं।४१ 'बंगवासी' ने विधेयक विरोध में बड़ी उग्रता दिखायी थी अतएव वायसराय ने भी देश के इस प्रमुख पत्र पर राजद्रोह के अभियोग चलाने का अनुमोदन किया जिससे अन्य समाचारपत्रों को भी नसीहत मिल सके।४२

'बंगवासी' अभियोग ने सरकार विरोध को और बढ़ाया। प्रत्येक समाचार पत्र में इस विषय पर आलोचना प्रारंभ हो गयी। वे तीन आपत्तिजनक लेख—हमारी दुर्दशा, अंगरेज शासकों का वास्तविक स्वरूप, स्पष्टवादिता की नीति 'असभ्य' राष्ट्र के लिए सर्वोत्तम है—जो अभियोग के आधार थे समस्त देश में चर्चा के केन्द्र बन गए। कलकत्ते के हाट, घाट, घरों में 'बंगवासी' के मालिक जोगेन्द्रनाथ बोस, संपादक कृष्णचंद्र मुखर्जी, मुद्रक अरुणोदय राय, कार्यालय अध्यक्ष ब्रजराज बनर्जी की गिरफ्तारी व तलाशी के समाचार ने खलबली पैदा कर दी।४३ 'बंगवासी' की सहायता के लिए भारतीय भाषाओं के पत्रों का एक एसोसिएशन भी बना। अंततः 'बंगवासी' के खेद प्रकट करने पर अभियोग वापिस ले लिया गया और 'बंगवासी' ने अपनी क्षमा प्रार्थना का कारण स्पष्ट करते हुए लिखा कि सरकारी अदालतों में सरकारी कानून द्वारा सरकार से ही लड़ना निरर्थक है। प्रशासकीय क्षेत्रों में भी यह प्रतीत किया गया कि 'बंगवासी' पर अभियोग चलाने का निर्णय ही दुर्भाग्यपूर्ण था।४४ भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में यह पहला अवसर था जब सरकार ने एक समाचार पत्र को अभियोग चलाने के लिए इसलिए छाँटा क्योंकि उसने राजद्रोही आंदोलन खड़ा कर दिया था।४५ सात वर्ष पश्चात् लोकमान्य तिलक पर प्लेग नियमों के माध्यम से जन भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए उसी प्रकार राजद्रोह का अभियोग चलाया गया।

---

४१ मिनिट्स आफ लैंसडाउन, टिप्पणी दिनांक मार्च २०, १८९१ (लैंसडाउन करेस्पान्डेन्स, माइक्रोफिल्म एन० ए० आई० में उपलब्ध)।

४२ बक्लैंड बंगाल अंडर लेफ्टीनेन्ट गवर्नर्स कलकत्ता १९०१ खंड २ पृष्ठ ९१८-९१८) सी० ई० बक्लैंड बंगाल सरकार के मुख्य सचिव रहे थे। लार्ड लैंसडाउन की टिप्पणी दिनांक सितंबर १५, १८९१ (लैंसडाउन करेस्पान्डेन्स)।

४३ दैनिक औ समाचार चंद्रिका अगस्त ७, १८९१ (रिपोर्ट बंगाल १८९१)।

४४ सी० एच० बेली द्वारा प्रेषित पत्र दिनांक सितंबर १७, १८९१ (लैंसडाउन करेस्पान्डेन्स माइक्रोफिल्म एन० ए० आई० में उपलब्ध।

४५ बक्लैंड बंगाल अंडर लेफ्टीनेंट गवर्नर्स कलकत्ता १९०१ पृष्ठ ९१९।

'बंगवासी' का सहवास वय विधेयक विरोध केवल धार्मिक रूढ़िवादिता से प्रेरित न था। गौ हत्या के प्रश्न पर 'बंगवासी' के दृष्टिकोण की तुलना सहवास-वय विधेयक से करने से, विधेयक विरोधी आंदोलन का राजनैतिक रूप स्पष्ट हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि गौहत्या हिन्दुओं को सबसे अधिक विचलित करने वाला प्रश्न रहा है। इस कारण उस समय अनेक स्थानों पर हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो जाते। कलकत्ते का प्रमुख मुस्लिम सांप्रदायिक पत्र 'मिहिर औ सुधाकर' गोकुशी को मुसलमानों का आवश्यक कृत्य बताता और दंगों के संबंध में उसके विवरण एकपक्षीय व उत्तेजनापूर्ण होते।४६ परन्तु 'बंगवासी' जिसने सहवास-वय विधेयक को लेकर अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध जिहाद बोल दिया था, गौहत्या के प्रश्न पर हिन्दुओं को समझदारी से कार्य करने की सीख दे रहा था और उन्हें मुसलमानों की सद्भावना प्राप्त करने को प्रेरित कर रहा था जिससे वे अपने हिन्दू भाइयों की भावनाओं को ठेस न पहुंचायें।४७ मुसलमानों द्वारा गौहत्या के कारण उत्तेजित होने वाले हिन्दुओं से 'बंगवासी' यह अनुरोध करता कि वे मुसलमानों की निर्धनता दूर करने का प्रयास करें जिससे उन्हें सस्ता गोश्त लेने को बाध्य न होना पड़े। यह उल्लेखनीय है कि गौहत्या के प्रश्न पर अंगरेजों के विरुद्ध 'बंगवासी' का आक्रोश अत्यंत तीव्र था और उनके द्वारा गौमांस भक्षण वह देश की गौपूजक जनता के लिए चुनौती मानता।४८

वर्तमान शताब्दी प्रारंभ होते होते वितरण की दृष्टि से 'हितवादी' बंगला पत्रों में सर्वप्रथम हो गया और 'बंगवासी' द्वितीय।४९ परन्तु अपनी स्थापना के प्रारंभिक बीस वर्षों में इंगलैंड व भारत के आधारभूत विरोध, ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा देश का आर्थिक शोषण, अधिकारों की प्राप्ति के लिए आत्मसम्मान व आत्मनिर्भरता का महत्व, रचनात्मक कार्यक्रम की आवश्यकता, स्वतंत्रता संग्राम में जनसाधारण की धार्मिक भावनाओं के उपयोग को प्रतिपादित कर इस प्रमुख प्रचार माध्यम ने देश के राजनैतिक चिंतन व कार्य प्रणाली को एक नई दिशा दे दी।

---

४६. 'मिहिर औ सुधाकर' मई २९ व जून १२, १८९७ (रिपोर्ट बंगाल १८९७)।

४७. 'बंगवासी' अक्तूबर २६, १८९५, मई २२, १८९७ व जुलाई ३, १८९७ (रिपोर्ट बंगाल १८९५ व १८९७)।

४८. 'बंगवासी' मई २२, १८९७ (रिपोर्ट बंगाल १८९७)।

४९. १९०१ में 'बंगवासी' की मुद्रित प्रतियां २६,००० थीं और 'हितवादी' की ३५,०००। 'हितवादी' भी कलकत्ते से बंगला साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित होता उसके संपादक थे कालीप्रसन्न काव्य विशारद।

कबीर पंथी तथा दरिया पंथी साहित्य में सृष्टि प्रक्रिया की परिकल्पना

सुरेश चन्द्र मिश्र

भारतीय दर्शन में जहाँ परमात्मा की विभूतियों का वर्णन है, वहाँ उसकी माया सम्बन्धिनी शक्ति से सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया का विवरण मिलता है, जिसका स्वरूप विविध सम्प्रदायों में विभिन्न प्रकार से मिलता है। जीव की उत्पत्ति तथा सृष्टि का निर्माण दोनों का ही साधना पक्ष में प्रमुख स्थान है। अतः संत साहित्य में विशेष रूप से दोनों का ज्ञान अपेक्षित है। प्रस्तुत निबंध में कबीर पंथ तथा दरिया पंथ के साहित्य में सृष्टि निर्माण के लिए जो मान्यताएँ निरूपित की गई हैं, उन पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है।

सृष्टि प्रारम्भ होने के पूर्व कबीर पंथ एवं दरिया पंथ ने समान रूप से इस मान्यता को प्रतिष्ठा दी है कि विश्व शून्याकार था। कबीर पंथी साहित्य में बताया गया है कि सृष्टि के पूर्व चारों तरफ अंधकार छाया हुआ था, तब आकाश पाताल, कूर्म, ग्राह, शेष, शारद, गौरि गणेश, निरंजन-तैंतिस कोटि देवता, ब्रह्मा, विष्णु महेश, शास्त्र, वेद, पुराणादि कुछ भी न थे, इन सब का अस्तित्व वट में छाया की भांति पुरुष में समाहित था।[1]

इसी प्रकार की कल्पना दरिया साहब की रचनाओं में भी मिलती है, यदि अन्तर भी है तो केवल इतना ही है कि उसमें कबीर पंथी वर्णन ही कुछ शब्दान्तर के साथ प्रस्तुत हुआ है। दरिया साहब ने अपनी एक रचना 'ग्यान रतन' में यह धारणा प्रकट की है कि सत्तर युग तक विश्व शून्याकार था, तब पाप पुण्य, राम, वेद, पवन, पानी, शिव भवानी, गर्व ग्यान, कच्छप, ग्राह, राव-रंक, फल-फूल गंगा, कृष्ण एवं उनकी मुरली, सूर्य, चन्द्र आदि किसी प्रकार की रचना नहीं हो सकी थी।[2] इसी प्रकार की विचारधारा उनकी एक अन्य रचना 'दरिया सागर' (पद सं० ९७०-९७४) में भी प्राप्त होती है।

प्रश्न उठता है कि क्या उपर्युक्त धारणाएं उन पंथों की मौलिक उद्भावनाएं हैं? परंतु इस प्रश्न का समाधान सहज ही हो जाता है, जब हम देखते हैं कि उक्त मान्यता भारतीय साहित्य में अतीत काल से ही प्रतिष्ठित है, और परंपरागत रूप में इन सम्प्रदायों को विरासत के रूप में मिली है। इनका मूल स्रोत वैदिक साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व के अन्य अनेक

---

१ अनुराग सागर, पृ० ८।

२ ग्यान रतन, पद सं० ६१-७०।

धार्मिक साहित्यों में भी ढूँढ़ा जा सकता है। ईसाई तथा इस्लामी परम्पराओं में भी उपर्युक्त विचारधारा लगभग समान रूप से मिलती है।

कबीर पंथी साहित्य के अनुसार जब हम सृष्टि प्रक्रिया पर विचार करना चाहते हैं, तो हमें 'अनुराग सागर' को ही अध्ययन का केन्द्र स्वीकार करना पड़ता है, यद्यपि इस विषय से सम्बद्ध अन्य अनेक कबीर पंथी ग्रंथ भी प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर सृष्टि विकास का क्रम चित्रित किया जा सकता है। किन्तु सृष्टि के विषय में समीचीन निर्णय लेने के लिए हमें कबीर पंथी साहित्य में सर्व प्राचीन ग्रंथ को मान्यता देनी होगी। वेंकटेश्वर प्रेस बबई से प्रकाशित 'अनुराग सागर' के संपादक श्री युगला नन्द बिहारी ने उस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियों का परिचय देते हुए यह बतलाया है कि उसकी सर्वाधिक प्राचीन प्रति प्रमोद नाम गुरु बालापीर के समय की है, जो १८०० ई० के आस पास कबीर पथ की छत्तीसगढ़ी शाखा के आचार्य थे। एक दूसरी भी विशेषता इस ग्रंथ में प्राप्त होती है, वह यह कि इसमें ही सृष्टि विकास का पूर्ण कथा शिल्प चित्रित हुआ है, और जिन अन्य रचनाओं में ऐसे प्रसंग आए हैं ; वे फुटकल रूप में ही देख पड़ते हैं, जिनके आधार पर हमारा मन्तव्य आंशिक रूप से ही पूर्ण हो सकेगा। सृष्टि विकास का उल्लेख यद्यपि 'कबीर मन्सूर' में भी आया है, परंतु यह रचना बिल्कुल अर्वाचीन है।

दरिया पंथी रचना 'ब्रह्म विवेक' सृष्टि विकास के लिए विशेष उल्लेखनीय है, इसके आधार पर उसका पूर्ण समन्वित चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है, और इन दोनों रचनाओं से जो उल्लेख हमें प्राप्त होते हैं उनमें पर्याप्त समानत्व है। इस प्रकार 'अनुराग सागर' एवं 'ब्रह्म विवेक' दोनों को ध्यान में रखते हुए, सृष्टि का क्रम निर्धारित करना है। साथ ही जिन अन्य रचनाओं में सृष्टि प्रक्रिया के बीज अकुरित हुए हैं, और जिनका स्थान इस प्रसंग में महत्वपूर्ण है, उनका भी यथावश्यक निर्देश कर दिया गया है।

आदि पुरुष :

दोनों पंथों ने सृष्टि का प्रारम्भ एक आदि पुरुष से स्वीकार किया है, जिसके समस्त गुण अलौकिक एवं सर्वथा अद्वितीय चित्रित किये गये हैं। आदि पुरुष का स्थान सृष्टि विषयक विवरण में सर्वथा सर्वोपरि स्वीकार करने की चेष्टा की गई है। सत्पुरुष के द्वारा ही अनन्त सृष्टि का विकास स्वीकार किया गया है।

किंतु आदि पुरुष की परिकल्पना भी इन दोनों सम्प्रदायों की कोई अपनी निजी देन नहीं

है, न तो इसमें उनकी कोई मौलिक सूझबूझ ही दृष्टिगत होती है। सृष्टि का प्रारम्भ तो आदि पुरुष से ही वेदों में भी स्वीकार किया गया है और सत्पुरुष की चर्चा लगभग इसी प्रसंग के अनुसार ही पूर्ववर्ती अनेकानेक धार्मिक ग्रथों ने भी प्रस्तुत की है। अन्तर केवल इतना ही ढूँढ़ा जा सकता है कि उनकी सज्ञाएँ कुछ भिन्न सी हैं, जो विशेष महत्व की बात नहीं। ईसाई, इस्लाम एव हिन्दू आदि सभी धर्मों में आदि पुरुष को यही सम्मान प्रदान किया गया है, ऐसी अवस्था में उपर्युक्त सम्प्रदायों के लिए आदि पुरुष की मान्यता के सम्बन्ध में उपर्युक्त वैदिक एव धार्मिक ग्रथ ही मूलाधार रहे होंगे।

निरजन

आदि पुरुष को जब सृष्टि विकास की इच्छा हुई तब उसने निरजन नामक पुत्र को जन्म दिया, यह मत लगभग दोनों पथों में समान रूप से ग्राह्य है। 'अनुराग सागर' में यह उल्लेख आता है कि सत्पुरुष ने सृष्टि प्रारम्भ करने वाली बलवती इच्छा को पूर्ण करने के लिए कमल पुष्प की उत्पत्ति की। इसके अनन्तर उन्होंने कूर्म, ज्ञानी, विवेक, सहज, सतोष, सुरति, आनद, क्षमा, निष्काम, जलरग, अचित, दीन दयाल, धैर्य और योग, सतापन इन सोलह अशो को उत्पन्न किया। 'अनुराग सागर' के अनुसार धर्मराय का अन्य नाम ही निरजन है।३ 'वश पजी' नामक एक परवर्ती कबीर पथी रचना में इन सोलह पुत्रों का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। निरजन सत्तर युग तक तप के निमित्त समाधि लगा कर आसीन रहे, इसके अनन्तर अपने तपबल से उन्होंने सत्पुरुष को प्रसन्न कर सृष्टि निर्माण की समस्त सामग्री अपने अधिकार में कर ली। इसी प्रसग में इन पथों ने एक कूर्म की भी कल्पना की है, जिसका कि सृष्टि विषयक प्रसग में अपना विशिष्ट स्थान है क्यों कि दोनों पथों की धारणा के अनुसार इस कूर्म से ही सृष्टि का प्रारम्भ माना गया है, परतु इस कल्पना का मूल रूप हमें ब्राह्मण साहित्य तथा महाभारत से प्राप्त हो जाता है, जिनके अनुसार " प्रजापति सतति निर्माण के लिए कूर्म रूप से पानी में सचार करता है।"४

सृष्टि निर्माण करने के लिए समस्त सामग्री को निरजन ने कूर्म के कई मुडों में से तीन को काट कर हस्तगत किया था, पर कूर्म ने निरजन के इस अविनीत व्यवहार से क्षुब्ध हो कर

---

३ अनुराग सागर, पृ० १४।

४ (श० ब्रा० ७ ५ १, ५-१०, महाभारत आ० प० १६, पद्मपुराण उ० २५९) श्री सिद्धेश्वर शास्त्री, भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोष, पृ० १५५।

सत्पुरुष से शिकायत की। इस पर निरंजन ने पुनः आराधना करके सत्पुरुष को प्रसन्न कर लिया, और सृष्टि के लिए बीज और खेत मांग लिये।

निरंजन का प्रसंग कबीर पंथी रचना 'कबीर मंसूर' में कुछ नवीनता लिये हुए आया है, उसके अनुसार सर्व प्रथम ब्रह्म सृष्टि हुई। ब्रह्मा ने सहज, अंकुर, इच्छा, अचित और अक्षर नामक छः पुत्रों को जन्म दिया। सत्पुरुष ने अपनी प्रतिभा से एक सातवें पुत्र की उत्पत्ति की, जिसे काल पुरुष या निरंजन के नाम से पुकारा गया। परंतु इसके जन्म की कहानी कुछ विलक्षण ढंग से दिखलाई गई है।५

'निरंजन' शब्द भी इन पंथों अथवा अन्य संत सम्प्रदायों की कोई नई उद्भावना नहीं है, प्रत्युत इसकी 'परम्परा भी वेदकालीन साहित्य से चली आ रही है। 'मुण्डकोपनिषद' में परब्रह्म सूचक कार्य की योजना बड़ी ही आकर्षक शैली में की गई है। 'छान्दोग्य उपनिषद' में निर्गुण ब्रह्म के लिए 'निरंजन' शब्द का प्रयोग किया गया है, इसी प्रकार 'श्वेताश्वतरोपनिषद' में भी "निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवंध निरंजनम्" कह कर ब्रह्म के समनार्थक रूप में उसे सादर स्वीकार किया गया है।

हिन्दी साहित्य के स्वर्णकाल में भी निरंजन शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होता है, विशेष रूप से योगमंत्र एवं भक्ति साहित्य में यह नाम अत्यधिक प्रयुक्त हुआ है। साथ ही 'निरंजन' शब्द कालान्तर में इस प्रकार अपनी महत्ता के शीर्ष विन्दु पर पहुँच गया कि मध्ययुग में निरंजन के नाम पर नाना पंथ भी चल पड़े। निरंजन शब्द का प्रयोग कबीर ने अपनी रचनाओं में बड़ी ही पवित्रता एवं सद्भावना के साथ किया है, और जहां तक सम्भावना है, वे निरंजन शब्द के प्रयोग के लिए नाथ पंथियों से प्रभावित रहे होंगे। यदि इस दृष्टि से हम कबीर साहित्य का अध्ययन करें तो देखेंगे कि वे निरंजन का कृपा पात्र बन कर उसके अभय शरण की तीव्र लालसा रखते थे। वे कहते हैं कि हे गोविन्द ! तू ही निरंजन है, तू ही राजा है। मेरा निरंजन तो अरूप, अरेख है, और वह माया मुक्त है, उसका न आदि है न अंत है। वह धरती आकाश से परे है और नाद विन्दु से परे है।६

कबीर ने जिस निरंजन शब्द का प्रयोग अपने साहित्य में पुनीत आस्था एवं सद्भावना के साथ किया था, कालान्तर में कबीर पंथ में वही 'निरंजन' छल, छद्म एवं प्रपंचकारी कुरीतियों

---

५. कबीर मन्सूर, पृ० २३।

६. कबीर ग्रंथावली, पृ० १२९।

का द्योतक बन गया, और ऐसी पवित्र मूर्ति पर पथानुगामियों ने कलङ्क के छींटे फेंकने प्रारम्भ किये। 'निरंजन' के इस भाग्य विपर्यय पर विद्वानों ने विचार किया है।

उक्त समस्या का समाधान तत्कालीन सम्प्रदायगत साधनाओं एवं वचारिक मान्यताओं के अध्ययन से हो सकता है। जब हम उस समय के वातावरण की ओर दृष्टिपात करते हैं तब पता चलता है कि जिस समय कबीर पंथ अपने विकास का मार्ग ढूँढ़ रहा था, उसके अपने निश्चय के समक्ष दो शक्तिशाली सम्प्रदाय थे, जिन्हें कबीर पंथ से निम्नस्तर का सिद्ध करने का प्रयास कबीर पंथी संतों को वांछनीय समझ पड़ा होगा। उड़ीसा का 'धर्म सम्प्रदाय' जिसमें गुप्त रूप से बौद्ध धर्म के बीज बिखरे पड़े थे, पर्याप्त विकास की ओर गतिशील था ऐसी ही अवस्था में वैष्णव धर्म कम उन्नति के शिखर पर न था, यही कारण रहा होगा कि इन उभय भक्ति सम्प्रदायों का प्रभाव स्पष्ट ही पड़ा हो। परन्तु भिन्नता इस बात की थी कि उनके उपास्य देवों को कबीर पंथ ने तिरस्कार एवं हेय दृष्टि से देखने का प्रयास किया। धर्म सम्प्रदाय के उपास्य-देव निरंजन थे, कबीर साहित्य में तो 'निरंजन' मायामय और अनेक प्रकार की छल प्रपंच की शक्तियों का द्योतक बन गया, उसका चरित्र उद्दंडता एवं दुष्टता से पूर्ण दूषित है। सृष्टि रचना की सम्पूर्ण सामग्री कूर्म जी से छीन कर वह सम्पूर्ण सृष्टि का नियामक बन गया, और प्रतिदिन तप्तशिला पर भून कर एक लक्ष जीवों का भोज किया करता है।७ कबीर पंथ की छत्तीस-गढ़ी शाखा में 'निरंजन' का अर्थ काल या निरंजन का द्योतक स्वीकार किया गया है।

श्री क्षितिमोहन सेन ने लिखा है कि उड़ीसा में अब भी वह निरंजन पंथ प्रचलित है जिससे निर्गुण साधना प्रभावित है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार धर्म सम्प्रदाय झारखण्ड से लेकर रीवां तक प्रचलित था, जिसकी सारी मान्यताओं को कालान्तर में कबीर पंथ ने आत्मसात कर लिया। सम्भवत इसी लिए निरंजन सम्बन्धी विचित्र आख्यानों की कल्पना कबीर पंथ में चल पड़ी।

उड़ीसा के धर्म सम्प्रदाय के प्रभाव के साथ साथ रमाई पंडित के 'शून्य पुराण', सीता राम दास के 'धर्म मंगल' का प्रभाव भी कबीर पंथ पर पड़ा है। श्रीमद्भागवत (गीता प्रेस प्रथम खण्ड पृ० १६६) में विराट पुरुष का जो वर्णन मिलता है, उसका भी प्रभाव कबीर पंथ के निरंजन वाली कल्पना पर लक्षित होता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी का विचार है कि निरंजन का सम्बन्ध बुद्ध से भी जोड़ा जा सकता है।८

---

७ कबीर मंसूर, पृ० ३६-७७।

८ देखिये विश्वभारती पत्रिका 'खण्ड ५ अंक ३' में हजारी प्रसाद द्विवेदी का लेख।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी एवं क्षितिमोहन सेन का उपर्युक्त मत समीचीन ही जान पड़ता है कबीर पंथ का सम्बन्ध अवश्य ही उड़ीसा से रहा होगा, क्यों कि कबीर पंथी रचनाओं में प्राप्त विवरणों से ज्ञात होता है कि कबीर ने जगन्नाथ जी के मंदिर की कई बार समुद्र की बाढ़ से रक्षा की थी, और वहां के पंडे के जलते हुए पैर को पानी के छींटों से शीतल किया था इन कहानियों से कबीर के जिस अलौकिक एवं अद्भुत चरित्र की परिकल्पना की जा सकती है उस से इस निष्कर्ष पर पहुँचना सरल है कि कबीर पंथ का अवश्य ही उड़ीसा से अभिन्न सम्बन्ध रहा होगा। यह बात डा० केदारनाथ द्विवेदी की इस धारणा से और भी पुष्ट हो जाती है कि सुखदास साहब जो कि कबीर पंथ के आठवें गुरु थे, के पूर्व के अधिकांश आचार्यों की समाधियाँ पुरी में प्राप्त होती हैं।९ इससे यह प्रतिध्वनित होता है कि अवश्य ही काशी में कबीर चौरा मठ स्थापित होने के पूर्व कबीर पंथ का पूरा प्रभाव पुरी में रहा होगा।

दरिया साहब की रचनाओं में निरंजन के लिए अब्दुल्ला नाम का प्रयोग भी मिलता है, जिससे उन पर इस्लामी प्रभाव परिलक्षित होता है। अब्दुल्ला के क्रिया कलाप का चित्रण दरिया पंथी साहित्य में ठीक उसी प्रकार का है जैसा कि कबीर पंथी साहित्य में निरंजन का है।

आद्या :

निरंजन की उत्पत्ति मात्र से सृष्टि का विकास असम्भव था इसलिए आदिपुरुष को एक आद्या नाम्नी स्त्री को जन्म देना पड़ा। आद्या सम्बन्धी कल्पना में भी दोनों पंथों में बहुत कुछ साम्य है, इस नारी के रूप लावण्य को देख कर निरंजन कामाशक्त हुए परंतु सर्व प्रथम आद्या ने उनके प्रणय निवेदन को अस्वीकार कर दिया, जिससे कुपित होकर निरंजन उसे निगल गये। अंततः योगजीत के प्रयास से पुनः आद्या की उत्पत्ति हुई, और कालान्तर में निरंजन और आद्या दाम्पत्य बंधन में बंध गये। दोनों के संसर्ग से ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की उत्पत्ति हुई। दरिया साहब ने इसका संकेत निम्नलिखित रूप में किया है :

साखी

तीनि अंश है ज्योति से ब्रह्मा विस्नु महेस।
आदि ब्रह्म वोए पुरवं हहीं, ताको सुनो संदेस ॥१०॥

—दरिया सागर, पृ० १५।

---

९. कबीर और कबीर पंथ, पृ० १६४।

आद्या नाम्नी स्त्री की परिकल्पना दोनों पथों में समान रूप से प्राप्त होती है। एक अन्तर दरिया पथ में अवश्य ही दृष्टिगोचर होता है वह यह कि इसके और भी अनेक नाम आए हैं यथा आदि ज्योति, जगज्जननी एवं आदि भवानी आदि।१० इस आदि ज्योति या आद्या नाम्नी स्त्री के विषय में भी इन पथों के अपने मस्तिष्क की कोई नई उपज नहीं है क्यों कि भारतीय दर्शन में परमात्मा के साथ उसकी शक्ति की परिकल्पना अतीत काल से चली आ रही है। सांख्य दर्शन में निरंजन एवं आदि शक्ति को पुरुष एवं प्रकृति कहा गया है। कबीर साहब या अन्य निर्गुण विचारधारा वाले संतों ने निरंजन और आदि शक्ति (आदि ज्योति, आदिभवानी, माया) तथा सगुण उपासकों ने उन्हें ब्रह्म एवं माया का रूप प्रदान किया है। इन्हीं आदि पुरुष एवं आदि शक्ति के संयोग से अनंत सृष्टि की रचना मानी गई।

संतानोत्पत्ति के पश्चात निरंजन ने आदि शक्ति से यह कहा कि मेरे विषय में किसी प्रकार की बात पुत्रों से न बताना, न तो मेरे पते से ही उन्हें अवगत कराना। इसके अनन्तर वे अंतर्धान हो गये। इस प्रकार का प्रसंग दोनों पथों में समान रूप से प्राप्त होता है। इसके पश्चात् आद्या ने अपने शरीर से तीन पुत्रियां उत्पन्न कीं जिन्हें समुद्र में जा कर छिप जाने का आदेश दिया। आद्या ने अपने पुत्रों को समुद्र मंथन के लिए भेजा।११ 'ज्ञान सागर' में इस प्रकार का वर्णन आया है कि पर्वत को मथानी एवं शेषनाग को रज्जु बनाया गया। समुद्र मंथन के अनन्तर तीनों कन्याएँ प्रगट हुईं, जिन्हें सरस्वती, सावित्री तथा पार्वती नाम से अभिहित किया गया। इन्होंने क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को वरण किया। साथ ही मंथन से जो वेद निकला उसे ब्रह्मा ने, अमृत को विष्णु ने एवं हलाहल को शिव ने ग्रहण किया। मंथन में इस प्रकार कुल १४ रत्न प्राप्त हुए थे, जिनके वितरण का अधिकार आद्या को ही था।१२

उपर्युक्त विवरण में सरस्वती नाम्नी कन्या के लिए एक और पौराणिक कहानी मिलती है, मत्स्य पुराण में ब्रह्मा की पत्नी शतरूपा के लिए सावित्री, सरस्वती, गायत्री, ब्रह्मानी आदि अनेक नामांतर प्रस्तुत किये गये हैं। शतरूपा ब्रह्मा की पुत्री एवं पत्नी भी हैं। प्रजापति एवं ब्रह्मा दोनों के चरित्रों में दुहितृ गमन की यह कथा समान रूप से मिलती है।१३ समुद्र मंथन का वृत्तांत इसी रूप में 'अनुराग सागर' में भी हमें देखने को मिलता है।१४

---

१० ब्रह्म विवेक, पृ० संख्या ३३९-३४०।

११ अनुराग सागर, पृ० २७।

१२ ज्ञान सागर, पृ० १९-२०।

१३ भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोष, पृ० ५२८-२९।

१४ अनुराग सागर, पृ० २७।

'ज्ञान सागर' से प्राप्त हुए समुद्र मंथन के प्रसंग से एवं 'कबीर मन्सूर' के समुद्र मंथन प्रसंग में पर्याप्त समानना है, अन्तर केवल राहु और केतु के प्रसंग का है जिसे 'ज्ञान सागर' के रचयिता ने त्याज्य समझा है। पुनः आद्या ने अपने पुत्रों को सृष्टि रचना के लिए आदेश दिया; इस प्रकार अंडज आद्या ने, पिंडज ब्रह्मा ने, उष्मज विष्णु ने और उद्भिज की सृष्टि शिव ने की। इस प्रकार ८४ लाख योनियों का निर्माण हुआ। दरिया पंथी साहित्य 'ज्ञान दीपक' में समुद्र मंथन का प्रसंग बहुत कुछ कबीर पंथ के सदृश ही मिलता है।१५

समुद्र मंथन के प्रसंग विष्णु पुराण एवं भागवत पुराण आदि में मिलते हैं, इसलिये इस प्रसंग में भी इन पंथों का अपना कोई नूतन संदेश नहीं प्रतीत होता।

वेद के अध्ययन से ब्रह्मा को जब इस वास्तविकता का ज्ञान हो सका कि उनका जन्मदाता कोई एक ऐसा दिव्य पुरुष है, जिसका विराट सिर आकाश में एवं पाँव पाताल में है, चारों दिशाएँ उनके कान और सूर्य एवं चन्द्र उसके नेत्र हैं।१६ तब उन्हें शंका हुई और उत्सुकता वश अपनी माँ से ऐसे पुरुष के विषय में प्रश्न किया, जिसके विषय में कबीर दास ने एक रमैनी में संकेत किया है :

तब बरम्हा पूछा महतारी। को तोर पुरुष कवन तैं नारी॥

इस पर आद्या ने उत्तर दिया—

हम तुम तुम हम और न कोई।
तुमहि पुरुष हमहीं तोर जोई॥

—बीजक प्रथम रमैनी।

कबीर के इस वर्णन के अनुरूप ही 'अनुराग सागर' में इस प्रकार के पद्य द्रष्टव्य हैं—

ब्रह्मा कहे जननी सुनौ कहहु कहा कंत तुम्हार है॥
कहे जननी सुनु ब्रह्मा कोउ नहिं जनक तुम्हार हो।
हमहि ते भई सब उत्पत्ति, हमहिं सब कीन सम्हार हो॥ २१॥

—अनुराग सागर पृ० ३०

दरिया साहब कृत 'ब्रह्म विवेक' में भी इसी प्रकार का प्रसंग देखने को मिलता है। जिसमें 'अनुराग सागर' के अनुरूप ही ब्रह्मा अपनी जननी से अपने जनक के विषय में जिज्ञासा करता

---

१५. संतकवि दरिया एक अनुशीलन, ज्ञान दीपक, पृ० ९ परिशिष्ट।
१६. कबीर मन्सूर, पृ० ५८-६३।

है कि कौन ऐसा पुरुष है, जिसकी कि तुम पत्नी हो। तब उत्तर में आद्या कहती है—'तब हमें और तुम्हें छोड़कर और कोई न था तुम्हीं पुरुष थे और मैं नारी।'१७

आद्या के इस प्रत्युत्तर पर ब्रह्मा की जिज्ञासा तुष्ट न हुई और पर्वत पर जाकर पितृदर्शनार्थ घोर व्रत धारण करने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया, इस प्रसग का वर्णन दोनों पथों के साहित्य में समान रूप से प्रस्तुत किया गया है। अतत ब्रह्मा को अपने उद्देश्य को सफलता के लिए पर्वत की ही शरण लेनी पड़ी, परतु अभाग्यवश एकांत में घोर तपश्चर्या के बावजूद भी अपने दृढ़ निश्चय में असफल ही रहे। पर्याप्त समय समाप्त हो जाने पर माता को सृष्टि विषयक चिंता उत्पन्न हुई, अस्तु आद्या ने ब्रह्मा को वापस बुला लाने के लिए गायत्री को भेजा।

ब्रह्मा को घोर समाधि में लीन हुआ देखकर गायत्री ने साहस सम्भालते हुए, मातृ संदेश सुनाया जिससे उनकी समाधि टूटी, परतु उन्हें माता के आदेश पालन मे बहुत बड़ी लज्जा का अनुभव करना पड़ रहा था, क्यों कि उनका प्रन अभी तक अपूर्ण ही था परतु जब गायत्री ने उन्हें यह विश्वास दिलाया कि "पितृ दर्शन की झूठी साक्षी माता के समक्ष देकर आप के उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए मैं उद्यत हूँ।" साथ ही गायत्री ने एक पुष्पावती कन्या उत्पन्न की, और उसे भी इस प्रकार की साक्षी का समर्थक बनाया। इस प्रकार अपना उद्देश्य सिद्ध होते देखकर सहर्ष माता के समक्ष उपस्थित होने का प्रस्ताव उन्होंने स्वीकार कर लिया। आद्या के समक्ष जब उक्त प्रसग प्रस्तुत किया गया तब उसने अपनी शक्ति से उनके षडयंत्र को भली भाति विदित कर लिया। इस प्रकार ब्रह्मा के इस असत्य वादन पर कुपित होकर आद्या ने उन्हें शाप दिया कि मिथ्यावादन के परिणाम स्वरूप तुम्हारी पूजा न होगी, और तुम्हारी सतान भी मिथ्याचार करेगी। गायत्री को यह शाप दिया कि तुम्हारा पति वृषभ होगा और तुम गाय बनकर विष्ठा भक्षण करोगी, और उसकी कन्या पुष्पावती को केतकी बन कर दुर्गंध का प्रसार करने का शाप दिया।१८

कबीर पथ में ब्रह्मा के शाप भ्रष्ट होने के लिए जिस प्रसग का अवलम्ब लिया गया है, उसका मूल रूप हम सस्कृत पौराणिक गाथाओं में भी पाते हैं। स्कद पुराण में इस प्रकार का वर्णन आया है कि—सृष्टि निर्माण के लिए सर्व प्रथम ब्रह्मा एव नारायण की उत्पत्ति हुई। दोनों में यह विवाद छिड़ा कि कौन श्रेष्ठ है? शकर ने प्रस्ताव रखा कि जो शिव लिंग के आदि अत का शोध कर सर्व-प्रथम उसकी सूचना देगा वही श्रेष्ठ माना जाय। तब ब्रह्मा ने

१७ ब्रह्म विवेक, पृ० ३३९।

१८, अनुराग सागर, पृ० २१।

गौ एवं केतकी को अपना झूठा साक्षी बना कर शिव के सम्मुख प्रस्तुत किया। परिणामतः ब्रह्मा को श्रेष्ठ पद दिया गया। किन्तु तथ्य से अवगत होने पर नारायण को श्रेष्ठ ठहराया गया एवं ब्रह्मा को अपूज्य घोषित किया गया।१९

दरिया पंथ में भी उक्त प्रसंग लगभग समान रूप से मिलता है, ब्रह्मा आदि के शाप भ्रष्ट होने का प्रसंग 'ब्रह्म विवेक' (पृ० :४२) में आया है जिनसे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों पंथों के साहित्यों में इस दृष्टि से पर्याप्त एकरूपता है। डा० केदारनाथ द्विवेदी ने सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ब्रह्मा को आद्या द्वारा जो शाप दिया गया वह सम्भवतः शैव साधकों एवं ब्राह्मणों के प्रति कबीर पंथी साधकों की अवहेलना के परिणाम स्वरूप हो।२०

किन्तु, जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, ब्रह्मा के शाप भ्रष्ट होने की कथा भी किंचित् भिन्नता के साथ स्कंद पुराण में मिल जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सृष्टि विकास की परिकल्पना कबीर पंथ तथा दरिया पंथ में लगभग समान रूप में मिलती है और यह स्पष्ट है कि दरिया पंथ इस दृष्टि से कबीर पंथ का ऋणी है। साथ ही यह भी स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि स्वतः कबीर पंथी सृष्टि प्रक्रिया वर्णन पौराणिक आख्यानों द्वारा प्रभावित है, और उसमें कोई भी ऐसी महत्वपूर्ण कल्पना नहीं मिलती जो मौलिक मानी जा सके।

---

१९. स्कंद पुराण १.१.६, १.३.२, १.९.१५; ३.१.१४।

२०. दे० स० पत्रिका, भाग ४९ संख्या १ सं १८८४ : 'कबीर पंथ पर पौराणिक प्रभाव' शीर्षक लेख पृ० ११।

सुभाषित काव्यों का लोकप्रिय कवि : विद्यापति

श्रीमन्नारायण द्विवेदी

संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध सुभाषित ग्रंथों में कवि विद्यापति की रचनायें उपलब्ध होती हैं जिससे उसकी उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा पर प्रकाश पड़ता है। सुभाषित रत्नकोष[1] (११-१२ वीं श०), सदुक्ति कर्णामृत[2] (१२०५ ई०), सूक्तिमुक्तावली[3] (१२५७ ई०), सुभाषितावली[4] (१४६० ई०), शार्ङ्गधर पद्धति[5] (१४ वीं श०), प्रसन्न साहित्य रत्नाकर[6] (१५ वीं श०) सदृश प्रसिद्ध कृतियों में कवि विद्यापति की रचनायें संगृहीत हैं जिससे उसकी रचनाओं की लोकप्रियता का मान होता है। सुभाषित ग्रन्थों का यह लोकप्रिय कवि विद्यापति कौन था, इस पर विद्वानों ने समय समय पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। वल्लभदेव कृत सुभाषितावली के सम्पादक डा० पीटर्सन ने संग्रह में आगत एक छन्द के आधार पर कवि विद्यापति को राजय कर्ण का सभाकवि कहा है। यहीं पर उन्होंने विक्रमादित्य द्वारा विल्हण को विद्यापति उपाधि प्रदान करने का उल्लेख भी किया है।[7] श्रीधर कृत सदुक्ति कर्णामृत के अभिनव संस्करण के सम्पादक डा० सुरेशचन्द्र बनर्जी ने कवि विद्यापति के सम्बन्ध में लिखा है कि इनकी पहचान कदाचित् विल्हण के रूप में की जा सकती है जिसे चालुक्यराज विक्रमादित्य षष्ठ ने विद्यापति उपाधि प्रदान की थी किन्तु यह कवि निश्चित ही प्रसिद्ध मैथिल कवि विद्यापति से भिन्न है जिसका प्रादुर्भाव १४ वीं, १५ वीं शताब्दी में हुआ था और जिसने संस्कृत में पुरुष परीक्षा, गंगा वाक्यावली, दुर्गा भक्ति तरंगिणी आदि ग्रंथों की रचना की थी।[8] भागदत्त जल्हण कृत सूक्ति मुक्तावली की प्रस्तावना में ए० कृष्णमाचार्य ने इस कवि को डाहलाधीश कर्ण को सभा में विद्यमान होना लिखा है और 'विद्यापति' को कवि विशेष की पदवी मानते हुए, उसका समय ११ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध स्वीकार किया है।[9] महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र ने भी

---

१ सुभाषित रत्नकोष—(हा० ओ० सि०) सम्पादक डा० डी० डी० कोशाम्बी।

२ सदुक्ति कर्णामृत—डा० सुरेशचन्द्र बनर्जी, फर्मा के० एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता।

३ सूक्तिमुक्तावलि—सम्पादक ए० कृष्णमाचार्य, गायकवाड़ ओरि० सिरीज, बड़ौदा।

४ सुभाषितावली—सम्पादक पीडर्सन, बम्बई।

५ शार्ङ्गधर पद्धति—सम्पादक पीटर्सन बम्बई।

६ प्रसन्न साहित्य रत्नाकर—विश्वभारती पत्रिका, भाग ८, अङ्क ४ शान्तिनिकेतन

७. सुभाषितावली, पृ० १२१।

८ सदुक्ति कर्णामृत—कलकत्ता (पृ० २२-२३)।

९. सूक्तिमुक्तावली—बड़ौदा, पृ० ५९-६०।

'विद्याकर साहस्रकम्' की भूमिका में मैथिल विद्यापति से इस कवि को भिन्न बतलाते हुए, सदुक्ति कर्णामृत में अवनरित उसके छन्दों के आधार पर इस कवि को १२ वीं शताब्दी के पूर्व का माना है। सुभाषितावली के उल्लेख के आधार पर उसे कर्ण का राजकवि मानते हुए विक्रमादित्य द्वारा विल्हण को 'विद्यापति' उपाधि प्रदान करने की ओर भी संकेत किया है।१० वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह विद्यापति कलचुरी अधिपति कर्ण का राजकवि था और विल्हण से भिन्न एक अन्य प्रसिद्ध कवि के रूप में समसामयिक साहित्य में ख्यात था। महामहोपाध्याय डा० वी० वी० मिराशी ने कवि विद्यापति को कलचुरि नृपति कर्ण का राजकवि बतलाते हुए उसे विल्हण से अलग माना है। अपने ग्रन्थ कलचुरि नरेश और उनका काल में उन्होंने कर्ण के राजकवियों का परिचय प्रदत्त करते हुए विद्यापति और विल्हण का अलग अलग परिचय दिया है एतदर्थ उन्होंने सुभाषितावली का यह प्रसिद्ध छन्द उद्धृत किया है जिसमें वाल्मीकि द्वारा राम, व्यास द्वारा धर्मराज, कालिदास द्वारा विक्रमादित्य, चित्तप विल्हण द्वारा भोज तथा विद्यापति द्वारा कर्ण की यशः वृद्धि हुई है, नगाड़े की ध्वनि से नहीं—इस तथ्य का उल्लेख हुआ है।११

वल्मीक प्रभवेण राम नृपति र्व्यासेन धर्मात्मजो
व्याख्यातः किलकालिदास कविना श्री विक्रमाङ्को नृपः
भोजश्चित्तप विल्हण प्रभृतिभिः कर्णोपि विद्यापतेः
ख्याति यान्ति नरेश्वराः कविवरैः स्पारैर्नभेरीरवैः॥

वस्तुतः विद्यापति विल्हण से भिन्न कवि प्रतीत होता है जो कलचुरि नरेश कर्ण के राज्याश्रय में विद्यमान था। कलचुरि नृपति कर्ण विद्याव्यसनी था और उसके राज्याश्रय में अनेक कवि विद्यमान थे जिन्होंने उसकी प्रशस्ति की है। विद्यापति ने भी अपने आश्रयदाता नृपति कर्ण की प्रशंसा में कुछ रचनायें की हैं जिनका संग्रह कतिपय सुभाषित काव्यों में हुआ है। विद्यापति द्वारा रचित एक छन्द में कर्ण की युद्धवीरता का सुन्दर चित्रण मिलता है। कवि ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि जब श्री कर्ण युद्धभूमि में दो तीन पग आगे बढ़ता है तो उसके शत्रु पृथ्वी से पलायन कर जाते हैं, उसके पांच दस वाण के आघात पर शत्रु अपने अस्त्र रख देते हैं, वह मानुषी स्त्रियों का पति है और उसके खड्ग के आघात से मृत शत्रु स्वर्ग की

१०. विद्याकर साहस्रकम्—डा० उमेश मिश्र, प्रयाग विश्वविद्यालय संस्करण, भूमिका भाग।

११. कलचुरि नरेश और उनका काल—म० म० डा० वी० वी० मिराशी, मध्यप्रदेश शासन, भूपाल।

१२. सदुक्ति कर्णामृत—छन्द सं० १४३४ पृ० ३८७।

अप्सराओं के पति हैं फिर भी उनकी निन्दा और कर्ण की प्रशसा क्यों होती है इसका निर्णय श्रीकर्ण ही कर सकता है—

त्व द्वि त्राणि पदानि गच्छसि महीभुज्ञ् ध्ययान्ति
दिपस्त्व याणादिशपच मु चसि वहून्यस्त्राणि मु चन्तिते।
ते देवी पतयस्त्वत्रासिनिहिता स्त्व मानुपीणां पति
स्ते निन्दास्तवणन कथमिति श्रीकर्णनिर्णीयताम् ॥१२

एक अन्य छन्द में कवि ने महाप्रतापी कर्ण के पितामह तथा पिता की प्रशसा की है और उनके शौर्य की उत्कृष्ट अभिव्यजना की है। कर्ण का पितामह अपने श्रवणों को ही आंख मानता था अर्थात् अपने गुप्तचरों से उपलब्ध सूचनाओं को ध्यान में रखकर राजनीतिक आचरण करता था। उसका पिता शक्तिधर कार्तिकेय के आयुधों की उपेक्षा करता था तात्पर्य यह कि उसके शस्त्र ग्रहण किये बिना ही शत्रु पलायन कर जाते थे। कर्ण स्वत गाय को भैंस मानता था अर्थात् पृथ्वी को अपनी पटरानी समझता था। इस प्रकार ये तीनों अपनी सत्ता में दृढ़ आस्था के लिए बुधजनों में लोकप्रिय थे—

कर्ण चक्षुर जीगणत्तव पितुस्तात पिता ते पुन
शक्त्याधर कुमारमप्य जगणत्त कातरत्वेन स
दे वोन्गामहिषीति पश्यति जगच्चेव विवेक्तु पुन
प्रगाल्भ्य प्रथयन्ति वस्तदपि च प्रजाघना साधर ॥१३

यद्यपि इस छन्द में कर्ण के पूर्वजो की अतिशयोक्तिमूलक प्रशसा हुई है किन्तु उसके पूर्व पुरुष द्वितीय कोक्कल तथा गांगेय देव निश्चित ही महान् प्रतापी राजा थे।

डाहलाधीश कर्ण कलचुरि के राज्याश्रय में विद्यापति के अतिरिक्त गगाधर, विल्हण, वल्लण, नाचिराज कर्पूर सदृश विशिष्ट कवियों को समयानुसार सम्मान प्राप्त हुआ था। इनकी कर्ण सम्बन्धी प्रशस्ति रचनायें सुभाषित ग्रन्थों में मिलती हैं।१४ कतिपय अन्य अज्ञात कवियों की रचनायें भी कर्ण के सम्बन्ध में प्राप्त होती हैं। कर्ण के सम्बन्ध में कतिपय लोक कथायें भी उपलब्ध होती हैं। लोककथानुसार एक नृपति कर्ण ने अपनी माता से काशी में सवालाख गायें दान करवायीं थीं और उसका यह कृत्य देखकर एक विद्वान् ब्राह्मण कवि ने भी अपनी माता से सवालाख गौयें दान कराने का सकल्प किया था। यह सुनकर कर्ण ने ब्राह्मणों को अपने यहाँ आने के लिए मनाकर दिया। विद्वान ब्राह्मण कर्ण के आवास के समीप ही कुटिया

---

१२ सदुक्ति कर्णामृत—छन्द स० १६३७ पृ० ४४३।

में रहने लगा। एक रात्रि उसके मल्हार राग से खिंचकर कर्ण की प्रेयसी स्वतः ब्राह्मण के पास आई और उससे प्रणय निवेदन किया। रानी ने कहा कि मैं आपके गुणों से आकृष्ट होकर अनाहूत ही प्रस्तुत हुई हूँ। मैं आपके सौहार्द को चाहती हूँ, किन्तु वही मुझे परिताप प्रदान कर रहा है। अस्तु! हे विदग्ध मैं आप से याचना करती हूँ कि प्रत्यावर्तित होने पर मुझे सखी द्वारा कपटपूर्वक बजाई गई तालियों का कटु स्वर न सुनना पड़े, ऐसा प्रयत्न करें—

अनाहूतैवैमि प्रचुरगुणलोभेन भवतः
समीहे सौहार्द्रं तदपि परिता पंचतनुते
विदग्ध त्वामेवं तदिह परिपाये कुरु तथा
यथा तस्यादाली कपटकरताली कटुरवः ॥

सच्चरित्र ब्राह्मण ने ऐसा न कर कर्ण के विरुद की प्रशंसा कर, रानी के अनुरोध पर पुनः मल्हार राग गाकर उसे प्रत्यावर्तित किया। ब्राह्मण कवि ने इस समय रानी से प्रतिवेदन करते हुए कहा था कि हे अम्बुजाक्षि! भयंकर गर्जन करने वाले मेघों से दिङ्मण्डल तमसाच्छन्न है, रात्रि प्रहरियों के जागरूक होने तथा उग्र सुभटों की आवाज से व्याप्त है। इस समय रिपु रूपी महासागर के लिए बड़वानल कर्ण के अन्तःपुर से तुम आगत हो, अतः मैं यह मानता हूँ कि नारी का भय कृत्रिम होता है—

उन्नादाम्बुद वर्धितान्धतमस प्रभ्रष्टदिङ्मण्डले
यामे यामिक जाग्रदुग्र सुभट व्याकीर्ण कोलाहले
कर्णस्यारि महार्णवाम्बु बड़वावन्हेर्यन्तःपुरा
दायातासि तदम्बुजाक्षि कृतकंमन्येभयंयोषिताम् ॥१५

कहा जाता है कि गुप्त रूप से राजन्य कर्ण ब्राह्मण की सच्चरित्रता देख रहा था। दूसरे दिन उसने कवि से प्रसन्न हो 'कृतकं मन्ये भयं योषिताम्' से समाप्त होने वाला छन्द सुनना चाहा जिसे कवि ने प्रसंग परिवर्तित कर शीघ्र ही दूसरी रचना के रूप में सुनाया। प्रसन्न राजा ने ब्राह्मण को विशिष्ट दिशाओं के राज्य दान करने का संकल्प किया और अपना मुंह फेरा। कवि उसे क्रुद्ध जानकर उसके विरुद् के कतिपय छन्द सुनाता रहा। अन्त में मंत्री के प्रस्तावानुसार राजा ने ब्राह्मण को सवालाख गायें दान दीं। प्रत्नविद् जार्ज ग्रियर्सन ने लोककथा के रूप में प्रचलित काशी के डाहरिया कर्ण सम्बधी इस घटना का उल्लेख इण्डियन

---

१४. सुक्तिमुक्तावली—गा० ओ० सि०, प्रस्तावना।
१५. सुभाषितावली—छन्द सं० २५५५।

एपिग्राफिया इण्डिका भाग १६ में प्रकाशित अपने लेख 'भारतीय साहित्य की अनोखी कथायें' में किया है। महामहोपाध्याय डा० वी० वी० मिराशी ने इस घटना पर टिप्पणी करते हुए ऐतिहासिक रूप में इसे असगत माना है। कर्ण सदृश प्रतापी नृपति के लिये यह सम्भव नहीं कि वह ब्राह्मण के दान देने के समय पलायन कर जाय तथा उसकी पत्नी का ब्राह्मण के प्रति इस प्रकार आकर्षण भी सम्भव नहीं लगता। अत इन रचनाओं को उन्होंने समस्यापूर्ति के रूप में ग्रहण किया है जिसमें कर्ण की कीर्ति रूपी नारी की प्रशसा ही अभिहित है।१६

दामोदर गुप्त ने अपने 'कुट्टनीमत' काव्य में लिखा है कि सग्राम से पलायन न करना, नाट्य ज्ञान, सुभाषित प्रेम और आखेट राजपुत्रों की कुलविद्या है—

सग्रामादनप्रसृति' प्रेक्षाभिक्षा सुभाषितामिरति
अच्छोटनाभियोग कुलविद्या राजपुत्राणाम् ॥१७

यह कथ्य युद्धवीर कर्ण के लिये भी प्रसग सापेक्ष प्रतीत होता है। उसके राज्याश्रय में अनेक कवियों को आश्रय प्राप्त हुआ था। सुभाषितकार विद्यापति ने भी उसे अपनी रचनाओं से रजित किया था तथा उसकी गुण ग्राहकता एव विद्वावली को काव्य वाणी दी थी।

यद्यपि इस कवि की कोई सम्पूर्ण रचना नहीं मिलती फिर भी उपलब्ध स्फुट रचनाओं से सिद्ध होता है कि उसकी काव्य प्रतिभा उदात्त थी। सुभाषित काव्यों में सगृहीत कई अन्य कवि उपलब्ध होते हैं जिनके किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ का पता नहीं किन्तु उनकी विकीर्ण रचनायें ही उन्हे अमर बनाने में समर्थ हुई हैं। सुभाषित काव्यों के अत्यन्त प्रसिद्ध कवि योगेश्वर की प्रतिभा का मूल्याङ्कन अमेरिकन प्रत्नविद् डा० डेनियल एच० एच० इगोल्स ने किया है और पाश्चात्य जगत के लिये उनकी रचनाओं का अग्रेजी भाषा में रूपान्तर प्रस्तुत किया है।१८

सामान्य रूप से सुभाषित काव्यों में राजाओं की प्रशस्तियों, नारी जीवन की शृंगारिक अभिव्यजना, तथा प्राकृतिक उपादानों के अतिशयोक्तिमूलक अभिव्यक्ति के चित्र मिलते हैं। नीति, शृङ्गार, एव भक्ति का चित्रण ही इनका प्रधान विषय है। नाना देवी देवताओं एव अवतारों से सम्बद्ध रचनाओं में काव्यकौशल का अद्भुत प्रवाह प्रस्तुत है। दार्शनिक मतवादों से सर्वथा विलग भक्तिभावना के चित्र इन रचनाओं में मिलते हैं। सामान्यतया हिन्दू देव परिवार के सदस्यों से सम्बद्ध गुणों का कौतूहलजनक आख्यान ही इन कवियों का लक्ष्य प्रतीत

---

१६ कलचुरि नरेश और उनका काल— डा० वी० वी० मिराशी, पृ० ११९-१२६।

१७ कुट्टनीमतम्—मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० २०० (छ० ९४८)।

१८ जरनल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, भाग ७४, १९५४।

होता है। अन्ततः सूक्तियों द्वारा चमत्कृत काव्य रचना इन कवियों का इष्ट है जिससे सहृदय को रसास्वादन कराया जा सके।

कवि विद्यापति की अधिकांश रचनायें शृंगारिक पृष्ठभूमि की ही उपलब्ध हैं। कदम्बरेणु से संयुक्त शीतल पवन के प्रवहमान होने पर मयूर नर्तन करते हैं, जल के भार से लदे हुए बादल गम्भीर गर्जन करते हैं। इस परिस्थिति में कान्त से वियुक्त विरहिणी नायिका अपनी शोकविह्वल दीन दशा को प्रकट करती है तथा हृदयहीन, निष्करुण चपला को धिक्कारती है जो नारी होकर भी नायिका को अपनी चमक से डराती है और उसके प्रति अपनी संवेदना व्यक्त नहीं करती—

> वातावन्तु कदम्बरेणु शवला नृत्यन्तु सर्पद्विषः
> सोत्साहा नववारिभार गुरवो मुंचन्तुनादं घनाः
> भग्नाः कान्ति वियोग शोक जलधौ मांवीक्ष्य दीनाननां
> विद्युतिकं स्फुरसि त्वमप्य करुणे स्त्रीत्वे समाने सति ॥१९

प्रणयकुपिता नायिका की मनुहार करते हुए नायक कहता है कि, हे सुन्दर भौहोंवाली! तुम्हारे कुपित होने पर मैंने खाना छोड़ दिया है, स्त्रियों से कथा छोड़ दी है, धूपादि सुगन्धित द्रव्यों कों मैंने दूर से ही त्याग दिया है अतः हे प्रेयसी! तुम कुपित होना छोड़ो, अब मैं तुम्हारे चरणों में प्रणत हूँ फलतः प्रसन्नता व्यक्त करो, अन्यथा हे सुन्दरी तुम्हारे न देखने पर मेरे लिये समस्त दिशाएं अन्धकारमय हो जायेंगी—

> सुभ्रु त्वं कुपितेत्यपास्तमशनं त्यक्ताः कथायोषितां
> दूरादेव मयोज्झिता सुरभयः स्रगान्ध धूपादयः
> रागं रागिणी मुंच मप्यवनते दृष्टे प्रसीदाधुना
> सद्यस्त्वयिरहमवनित सुभगेसर्वांममान्धादिशः ॥२०

कवि का यह छन्द अत्यन्त लोकप्रिय प्रतीत होता है। सुभाषित काव्यों के अतिरिक्त यह सरस्वती कण्ठाभरण एवं कुवलयानन्द सदृश काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उद्धृत है।

नायिका के नेत्रों की भंगिमा तथा स्मित की कान्ति की अतिशयोक्ति मूलक प्रशंसा करते हुए कवि कहता है कि हे तन्वि! मछली के सदृश तुम्हारे चटुल नेत्रों के अवलोकन से ही मैं

---

१९. सुभाषितावली—बम्बई, पृ० १२२।
२०. वही, पृ० १२२।

अन्तिम दशा को प्राप्त कर चुका हू फिर तुम चन्द्रिका के समान अपनी स्मिति की कान्ति से मुझे पीसना क्यों चाहती हो—

वीक्षितेन शाफरी चटुलेन
प्रापित खलु दशामहमन्यताम्
कि स्मितेन वद कौमुदिभासा
पिष्ट पेषणमिद तव तन्वि ॥२१

मुग्धा नायिका के स्पर्श विहीन सौन्दर्य का अन्योक्तिमय वर्णन करते हुए कवि कहता है कि हे भृङ्ग ! उस सुन्दर लता का तुम मर्दन करो जो तुम्हारे भार को वहन करने में सक्षम है। परागांकुर रहित नई चमेली की कली रूपी अजातरजत मुग्धा नायिका को क्यों पीड़ित कर रहे हो—

अन्यासु यावदुपमर्द सहास भृङ्ग
लोल विनोदयमन सुमनोलतासु
मुग्धामजातरजस कलिकामकाले
व्यर्थ कदर्थयसि कि नवमालिकाया ॥२२

इसी प्रकार सयमित केश, कर्णों का स्पर्श करने वाला लोचन, सुवृत्त कुच युगल, मनोज्ञ श्रुति एव भौहों से पवित्र मुख तथा विकीर्ण दन्त पक्ति से सपुष्ट नायिका का सौन्दर्यमय वपु प्रेमियों को अनुराग की प्रेरणा प्रदान करता है—

केशा सयमिन श्रुतेरऽपि पर पारगते लोचने
सद्वृत कुचयोर्युग श्रुतिमले श्रोत्रे भ्रुवो सतती
अन्तर्वक्त्रमपिस्वभावशुचिभि कीर्ण द्विजाना
गणैरित्थ तन्विवपु प्रशान्त मथिता राग करोत्येवन ॥२३

अन्यत्र विप्रलम्भ क्षेत्र के प्रेमोद्दीपक परिस्थिति का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि काले काले जलार्द्र बादल आकाश में सचरण कर रहे हैं और हसों को मोद प्रदान करते हैं। अनुकूल शीतल पवन प्रवहमान है किन्तु यह समय तन्वङ्गी सुन्दर लताओं के स्तन-कलश-हारावली का आलिगन करने वाले विरहीजनों को व्यथा प्रदान करता है—

---

२१. सुभाषितरत्नकोश, परिशिष्टम्, पृ० ३३५।
२२ वही।
२३ वही, पृ० ३३६।

काले कालाम्बुवाहा कुलगगनजलद्वारिधाराकराणि
कादम्बामोदहृद्दो वहति च मरुति प्रेमबन्धानुकूले
तन्वीनां सुन्दरीणां स्तनकलशगलत्ताहारावलीनां
भग्नः कण्ठाग्रहोऽपि व्यथयति हृदयं किं पुनः विप्रयोगः ॥२४

विभिन्न विषयों से सम्बन्धित रचनाओं में कवि की चमत्कृत करने वाली प्रतिभा निदर्शित होती है। देवमूर्तियों का आकस्मिक पात अशुभ सूचक है किन्तु परिस्थिति विशेष में ऐसा नहीं भी कहा जा सकता। नारायण अथवा सुभद्रा के निपात से उत्पात की आशंका की जा सकती है किन्तु सुरापान से छके हुए रसविघूर्णित लोचन वाले बलभद्र के पृथ्वी पर पतन से कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिए—

औत्पातिकं तदिह देवगवेषणीयं
नारायणो यदि पतमेथवा सुभद्रा
कादम्बरी रसविघूर्णित लोचनस्य युक्तं
हिलाङ्गलभृतः पतन पृथिव्याम् ॥२५

समुद्र का वर्णन करने हुए कवि ने कहा है कि यद्यपि यह समुद्र जल एवं रत्नराशि का निवास स्थान है—रत्नाकर कहलाता है, तृष्णा बुझाने वाला व्यापक जल वाला है किन्तु कौन जानता है कि पहले अगस्त्य मुनि ने अपनी अंजुलि में भर कर क्षण भर में इसका पान कर लिया था—

अयं वारमेको निलय इति रत्नाकर इति
श्रितो स्मामिस्तृष्णा तरलितमनोभिर्जलनिधिः
क एवं जानीते निजकर पुरी कोटरगतं
क्षणादेवं ताम्पत्तिमिसकरमापास्यतिमुनिः ॥२६

सुभाषित संग्रहों में यह छन्द अधिक प्रचलित प्रतीत होता है। इसके रचयिता रूप में विद्यापति, भल्लट, नन्दन आदि कवियों के नाम उल्लिखित हुए हैं जो स्वभावतः इसकी लोकप्रियता के कारण ही हुआ है।

कस्तूरी के परिमल के गुणों की प्रशंसा करते हुए कवि ने अलंकृत शैली में लिखा है कि

---

२४. सुभाषित रत्नकोष, पृ० ३३६।
२५. वही, पृ० ३३१।
२६. सुभाषित रत्नकोष—हा० ओ० सि०, छं० सं० १०२५।

यद्यपि इसका जन्मस्थान पवित्र नहीं है, नवर्ण ही वर्णनीय है। शरीर में लगाने पर दूर से ही पक की आशका होती है फिर भी उसकी सुरभि सारे द्रव्यों के दर्प को चूर्ण करने वाली है। परिमल गुण वाले कस्तूरिका के गुण को कौन जान सकता है—

जन्मस्थान न खलु निमल वर्णनीयोन वर्णो
दूरात्पु सा वपुषि रचना पङ्क शङ्का करोति
यद्यप्येव सकल सुरभि द्रव्यगर्वापहारी
को जानीते परिमलगुण कोऽपिकस्तूरिकाया ॥२७

जलद से ढके हुए दिन की छाया के पटतर में शरद ऋतु का निशाकर अपनी सहस्रों किरणों से अन्धकार का भेदन करने पर भी नहीं आ सकता—यह भी विद्यापति की उक्ति चमत्कारमयी वाणी की देन है—

शरदि समग्र निशाकरकरशत हततिमरसचयारजनी
जलदान्तरितार्कामपिदिवसच्छायां न पूरयति ॥२८

अन्तत कवि एक अन्य सुभाषित में आत्म प्रशसा के स्वर में कहता है कि विद्वज्जनों के साथ उसका साहचर्य रहा है, व्याकरणविदो को जानता है, श्रोत्रिय लोग उसे जानते हैं, कवियों द्वारा वह कटाक्ष से देखा जाता है और उनके लिये कसौटी बन चुका है—

जाता स्म प्रतिवेशिन पदविदां जानन्ति न श्रोत्रिया
षटकर्माध्वनि गच्छतां च विदुषां सार्थे प्रपन्तावयम्
दृष्टा स्म कविविद्यया मुकुलितै नेत्रत्त्रिभागैश्चिर
किं विद्म कियदन्यथासु निकषग्रावा भवादृग्जन ॥२९

वस्तुत कवि विद्यापति की किसी सम्पूर्ण कृति के उपलब्ध न होने के कारण उसकी काव्य प्रतिभा का सम्यक मूल्याङ्कन कठिन है किन्तु सुभाषित सग्रहों में अवतरित उसकी रचनाओं के व्यापक उपयोग से उसकी उत्कृष्ट प्रतिभा की एक झलक अवश्य उपलब्ध होती है। सरस्वती कण्ठाभरण तथा कुवलयानन्द सदृश अलकार ग्रन्थों द्वारा कवि की रचनाओं के उपयोग से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। कवि विद्यापति कलचुरि नरेश महाप्रतापी कर्ण की राजसभा का प्रसिद्ध कवि था और उसने अपनी रचनाओं से सस्कृत काव्य साहित्य को अनुप्राणित किया था—यह निसदिग्ध रूप से सिद्ध होता है।

---

२७ सुभाषितावली—पृ० १२१।
२८. सुभाषितावली—पृ० १५९।
२९ सदुक्ति कर्णामृत—छं० स० १३८२, पृ० ३७३।

आदिकालीन हिन्दी-साहित्य और बंगला-साहित्य का अन्तरावलम्बन

मदन कुमार

भारतीय धर्म-साधना की पृष्ठभूमि में हिन्दी साहित्य और बंगला साहित्य के अन्तरावलम्बन का अनुसंधान उन विस्मृत तत्वों को प्रकाश में लाता है, जिनके आलोक में दोनों के साहित्येतिहास का पुनर्निर्माण आवश्यक हो जाता है। यदि इस अनुसन्धान की परिधि पूर्वीय भारत की अन्य भाषाओं तक विस्तृत कर दी जाए तो उन्हें एक में बाँधनेवाली अनेक कड़ियाँ अनायास ही उपलब्ध हो जाएँगी, और इस प्रकार हम भारतीय संस्कृति और उसमें विकसित होने वाले साहित्य की अखंडता का साक्षात्कार कर सकते हैं। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने इन अनुसन्धान के महत्व की ओर संकेत किया है,[१] और स्वयं इस विषय पर एक निबंध लिखा है जिसका शीर्षक है, "मध्यकालीन साहित्यों की परस्पर सापेक्षिकता।"[२] इस निबंध में आचार्य द्विवेदी ने मध्यकाल में बने हुए समूचे भारतीय साहित्य को एक और अविच्छेद्य मान कर चलना ही उचित बताया है।[३]

हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश और वंग प्रदेश के मध्य बिहार प्रदेश की स्थिति है। आर्य संस्कृति की ज्योति बिहार से ही बंगाल में प्रसारित हुई।[४] पूर्वीय भारत के राजनैतिक इतिहास का वास्तविक आरंभ मगध साम्राज्य के उदय से होता है, बंगाल इस साम्राज्य का अंग था।

---

१. "अनुसंधान की प्रक्रिया" (सम्पादक—डा० सावित्री सिन्हा एवं डा० विजयेन्द्र स्नातक) के अंतर्गत "शोध-सामग्री" शीर्षक डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध में अनेक उदाहरणों द्वारा इस अनुसन्धान के महत्त्व की ओर संकेत किया गया है।

२. "विचार-प्रवाह" (ले० —डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी) का एक निबंध।

३. "हमारे देश का सांस्कृतिक इतिहास इस मजबूती के साथ अदृश्य कालविधाता के हाथों से सी दिया गया है कि उसे प्रान्तीय सीमाओं में बाँधकर सोचा ही नहीं जा सकता। उसका एक टाँका काशी में मिल गया तो दूसरा बंगाल में, तीसरा उड़िसा में और चौथा महाराष्ट्र में मिलेगा और पाँचवा मालबार या सीलोन में मिल जाए तो आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है।"—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, विचार-प्रवाह, पृ० ८२।
डा० सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय ने भी इस सत्य की ओर संकेत किया है—
दे० लिट्रेचर इन माडर्न इण्डियन लैंग्वेज़ेज, पृ० ४३।

४. गंगा का प्रवाह आर्य संस्कृति के विकास का क्रम है। आर्य संस्कृति उत्तर प्रदेश से बिहार में आई, और बिहार से ही बंगाल में प्रसरित हुई।

सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से विहार और बगाल अत्यन्त समीप रहे हैं, और सन् १९१२ ई० तक दोनों एक ही प्रान्त थे। पुन एक ही मागधी अपभ्रश से उद्भूत बिहारी और बगला भाषाएँ सहोदरा हैं। अत हिन्दी साहित्य को पूर्वी भारतीय भाषाओं के साहित्य से सम्बद्ध करने में बिहार का महत्त्वपूर्ण योगदान है। विकास क्रम में हिंदी साहित्य और बगला साहित्य का जब कभी सगम हुआ, यह सगम बिहार की ही भूमि पर हुआ। इस दृष्टि से विहार के साहित्य का शोध अत्यत उपादेय और आवश्यक है।

प्रेरणा स्रोत एव पारिपार्श्विक परिस्थितियों की समानता के कारण बगला साहित्य के विकास की रूपरेखा बहुत कुछ वही है, जो हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा। विकास क्रम में दोनों का अनेकबार सगम हुआ, और यह सगम सदैव समृद्धि का कारण ही प्रमाणित हुआ। दोनों भाषाओं के साहित्य ने एक दूसरे के प्रभाव से अपने को उन्नत कर जीवित एव जाग्रत होने का प्रमाण दिया।

सिद्ध साहित्य .

हिंदी और बगला दोनों के साहित्य का आदि स्रोत सिद्ध साहित्य है। सिद्ध साहित्य के अन्वेषण का श्रेय महामहोपाध्याय डा० हर प्रसाद शास्त्री को है। श्री शास्त्री ने सन् १९०९ में नेपाल के दरबार पुस्तकालय से इस महत्त्वपूर्ण साहित्य का उद्धार किया था। अपनी उपलब्धि—५० चर्यापद—का उन्होंने 'बौद्ध गान ओ दोहा" शीर्षक से सम्पादन किया, जो सन् १९१० ई० में "वगीय साहित्य परिषद्", कलकत्ता द्वारा बगला लिपि में प्रकाशित हुआ।[५] इसके बाद डा० प्रबोध चन्द्र बागची ने इन ५० चर्यापदों के तिब्बती रूपांतर "तजुर" से एव दो और विलुप्त पदों का अन्वेषण कर "दोहाकोष" शीर्षक से समस्त चर्यापदो को देवनागरी लिपि में प्रकाशित कराया। इस साहित्य के कुछ विलुप्त अशों के उद्धार का श्रेय श्री राहुल सांकृत्यायन को भी है।

---

५ महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री द्वारा सपादित "बौद्ध गान ओ दोहा" का उपशीर्षक है, "चर्याचयविनिश्चय"। नेपाली हस्तलिखित ग्रथ में भी यही शीर्षक है। महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्य के अनुसार उचित शीर्षक होना चाहिए, "आश्चर्यचर्याचय।" डा० प्रबोध चन्द्र बागची उचित शीर्षक 'चर्याश्चर्यविनिश्चय" मानते हैं।

६ वही, भूमिका, पृ० ११५।

डा० हर प्रसाद शास्त्री ने इन चर्यापदों की भाषा को प्राचीनतम बंगला भाषा का अवशेष बताया। डा० सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय ने भी अपने प्रबंध, 'द ओरीजिन एण्ड डेवेलपमेंट अव बेंगाली लैंग्वेज' में सिद्धाचार्यों की भाषा को दृढ़ स्वर में बंगला ही माना है।६ डा० शशिभूषण दास गुप्त का भी यही विचार है।७

बहुत दिनों तक सिद्ध साहित्य को हिंदी साहित्य से सम्बद्ध नहीं किया गया। सर्वप्रथम श्री राहुल सांकृत्यायन ने हिदी साहित्य के इतिहास के पुनर्निर्माण में सिद्ध-साहित्य का महत्त्व प्रतिपादित किया। अपनी "हिन्दी काव्यधारा" में उन्होंने सिद्ध साहित्य का अन्तर्भाव किया है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० काशी प्रसाद जायसवाल ने "सप्तम अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन", बड़ौदा के सभापति भाषण में श्री राहुल सांकृत्यायन के मत का समर्थन कर चर्यापदों की भाषा को प्राचीन बिहारी भाषा का रूप बताया।

अब तो असमिया एवं ओड़िया के विद्वान् भी सिद्ध-साहित्य को अपनी भाषा और साहित्य का प्राचीनतम रूप सिद्ध करने लगे हैं। डा० सूर्य कुमार भूइयाँ ने असमिया साहित्य का परिचय देते हुए जो लिखा है, उसका आशय है कि 'बौद्ध गान ओ 'दोहा' में कुछ कवि ऐसे हैं जो कामरूप के थे, जहाँ बौद्धमत के वज्रयान और सहजयान संप्रदायों का कुछ प्रचार था। इन गीतों की भाषा में कुछ ऐसे तत्त्व मिलते हैं जो असमिया काव्य शैली में प्रचलित हैं।८

सिद्ध साहित्य को ओड़िया भाषा और साहित्य का आदि रूप डा० मायाधर मानसिंह ने भी माना है।९

सिद्ध साहित्य का जो दोहेवाला अंश है उसकी भाषा पश्चिमी अपभ्रंश है। दृष्टिकोण, सिद्धान्त, साधना और शैली के आधार पर इन दोहों को चर्यापदों से विच्छिन्न नहीं माना जा सकता। दोहे की परम्परा परवर्ती हिदी साहित्य में पूर्ण उत्कर्ष के साथ वर्तमान है। सिद्ध-साहित्य के विपुलांश की रचना मगध में हुई जो हिंदी-भाषा-भाषी प्रदेश के अन्तर्गत है। हिंदी का संत-साहित्य इसी परंपरा का क्रमिक विकास है। संत-साहित्य में जो परस्पर विरोधी लगने वाले तत्त्व और सिद्धान्त सर्वथा आश्चर्यजनक रीति से समन्वित हो गए हैं, उन्हें समझने के लिए इस परम्परा का ज्ञान आवश्यक है। श्री राहुल सांकृत्यायन की मान्यता है—"सिद्धों

---

७. आब्सक्योर रेलिजस कल्टस् एज़ बैकग्राउण्ड अव् बेंगाली लिटरेचर, पृ० ४।

८. माडर्न इण्डियन लैंग्वेज़ेज' ग्रंथ में असमिया साहित्य पर सूर्य कुमार भूइयाँ का लेख, संपा० वी० के० गोकक, पृ० ५३।

९. वही, उड़िया साहित्य, पृ० ११९।

की कविता का प्रचार ही पीछे कबीर, नानक, दादू आदि संतों के वचन-प्रवाह के रूप में परिणत हो गया। किन्तु सिद्धकाव्य-प्रवाह (जिसका अन्त काशिराज जयचन्द देव के दीक्षागुरु जगन्मित्रानन्द—मित्रपा—के साथ बारहवीं शताब्दी में होता है) पन्द्रहवीं शताब्दी के आरंभ में आरब्ध होने वाले कबीर आदि संतों की कविता के प्रवाह से जोड़ने के लिए नाथपंथ की कविताएं संयोजक शृंखला है।"१० वस्तुत सिद्ध साहित्य के अभाव में हिंदी की ज्ञानाश्रयी निर्गुण शाखा का अध्ययन संभव नहीं है।

इन्हीं तर्कों के आलोक में सिद्ध साहित्य को हिंदी भाषा और साहित्य का आदि रूप मानना सर्वथा स्वाभाविक है, किन्तु उस पर केवल हिंदी का अधिकार मानना दुराग्रह ही होगा।

पूर्वीय भारत के इन सिद्धाचार्यों के द्वारा शौरसेनी अपभ्रंश में दोहे की रचना सर्वथा अस्वाभाविक नहीं है। इसका कारण संभवत यह है कि उस युग में दोहे की स्वीकृत साहित्यिक भाषा शौरसेनी अपभ्रंश ही थी, अन्यथा कोई कारण नहीं है कि एक ही कवि के पदों की भाषा उसके दोहों की भाषा से भिन्न हो। सिद्ध-साहित्य की रचना पालयुग (८ वीं से १२ वीं शताब्दी तक) में हुई थी। उस समय मिथिला, अंग एवं मगध का संपूर्ण प्रदेश पाल साम्राज्य के अन्तर्गत था, और विहार तथा वंगाल को विभाजित करनेवाली कोई निश्चित सीमान्त-रेखा नहीं थी। परवर्ती बंगला साहित्य पर भी सिद्ध-साहित्य का प्रभाव कम नहीं है।

सिद्ध साहित्य विकृत बौद्ध धर्म का साहित्य है, जिसमें उन सारी बातों का समावेश किया गया, जिन्हें तथागत ने अवांछनीय माना था और उनके विरुद्ध क्रांति भी की थी। अपनी ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों के कारण बौद्ध धर्म को कुमारिल भट्ट एवं महामनीषी शंकराचार्य से पराजित होकर ८ वीं शताब्दी में मध्यदेश से निष्कासित होना पड़ा। तब अधःपतित धर्म ने पूर्वीय भारत में शरण ली और उसे पालवंशी राजाओं का संरक्षण भी प्राप्त हुआ।

साधना की सरलता और सदाचार की महानता से भ्रष्ट हो जाने पर बौद्धधर्म में वाममार्गीय कुत्साओं के प्रतीक मंत्रयान और वज्रयान का क्रमश विकास हुआ, और उनमें मंत्र, तंत्र, चमत्कार, सिद्धि आदि उन विकृतियों का समावेश हुआ जिनसे अमिताभ ने सद्धर्म को बचाने की चेष्टा की थी। पंचमकारों की साधना में जब वज्रयान ने अत्यंत बीभत्स रूप धारण किया, सहजयान का विकास हुआ, जिसने सहजमार्गीय जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में अपनी आस्था प्रकट की। सहजयान ने अन्तरसाधना, नैरात्मभावना एवं कायायोग के

---

१० भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, बड़ौदा, १९३३ के हिंदी-विभाग के सभापति-पद से भाषण, "साहित्यिक निबंधावली", पृ० ?।

साथ सहज-शून्य-साधना का प्रतिपादन किया। सिद्ध-साहित्य इसी सहजयानी परंपरा का साहित्य है। इस साहित्य में जिस अभिसन्धि पूर्ण भाषा का प्रयोग हुआ है, उसे संध्या भाषा या संधा भाषा की अभिधा दी गई है।

सिद्धाचार्यों की निश्चित तिथि के निर्णय का प्रयास अत्यंत कठिन है। किन्तु सामान्यतः उनका काल ८ वीं शताब्दी तक माना जा सकता है जो पूर्वीय भारत के इतिहास में पाल-युग है। चौरासी सिद्धाचार्यों की जो संख्या उपलब्ध है उनमें से अधिकांश बंगाल एवं बंगाल के पार्श्ववर्ती प्रदेशों के निवासी थे।११ उनकी साधना के केन्द्र पूर्वीय भारत में असम से लेकर बिहार तक प्रसारित थे।

ब्राह्मण धर्म के उज्जीवन के साथ यद्यपि बौद्धधर्म वंगभूमि से निष्कासित कर दिया गया, फिर भी सांस्कृतिक जीवन पर उसकी छाया शेष रही।१२ तत्कालीन परिस्थितियों से समन्वय कर उसने नवीन रूप धारण किया। डा० हर प्रसाद शास्त्री ने सर्वप्रथम इस बिन्दु की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था। इस विषय पर उनकी कृति 'डिस्कवरी अव् लिविंग बुद्धिज्म' अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।१३

धर्म ठाकुर की प्रशंसा में लिखे गए "धर्म मंगल" भले ही बौद्धधर्म के अवशेष न हों, उनसे प्रभावित तो अवश्य ही थे। "धर्मराज यज्ञ निन्दा करे", "सिहले धर्मराजेर वहु सम्मान," "आगे ते छिलेन प्रभु ललित अवतार" प्रभृति अनेक वाक्य हैं जिनके आधार पर धर्म ठाकुर को तथागत का विकृत रूप माना जा सकता है। माणिक राम गांगुली को स्वप्न में जब धर्म ठाकुर ने "धर्म-मंगल" लिखने को प्रेरित किया, माणिक राम कहता है—"जाति जाए प्रभु यदि इहा करि गान"। इसके अतिरिक्त अस्पृश्य वर्ग के हाड़ियों के पोरोहित्य का भी वर्णन है, जो सिद्धों के

---

११. दे० एस० के० दे का लेख 'बुद्धिस्ट तांत्रिक लिटरेचर अव् बंगाल'-नार्थ इण्डियन एण्टिक्वेरी, खण्ड १, संख्या १।

१२. बंगाल में ब्राह्मण धर्म का उज्जीवन सेन वंश के अभ्युदय के साथ हुआ।

१३. उत्कल के पंच सखाओं के साहित्य में बौद्धधर्म प्रच्छन्न रूप से जीवित था, श्री नागेन्द्र नाथ वसु ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है। (द्र० मयूरभंज आर्कओलाजिकल सर्वे की रिपोर्ट)। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "बिहार में बौद्धधर्म चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में जीवित था और उसका विलय कबीर पंथ में हो गया था।"

—मध्यकालीन साहित्यों की परस्पर सापेक्षिकता, "विचार-प्रवाह", पृ० ८५।

प्रभाव का संकेत है। "धर्ममंगल" के गीतों में सिद्धाचार्यों का अत्यंत आदर के साथ उल्लेख हुआ है। हाड़िपा राजा गोविन्द राय को सम्बोधित करते हुए कहता है—

> "हाड़िपा बलेन सुन राजा गोविन्द राइ
> अहिंसा परम धर्म आर पर नाइ।"

रमई पंडित ने अपने "शून्य पुराण" में बौद्धों के शून्यवाद को ही विस्तार दिया है। कानु भट्ट का "चर्याचर्यनिश्चय" स्पष्टत सिद्धों की परंपरा से सम्बद्ध है। बंगीय सहजिया सम्प्रदाय के वैष्णव आवरण में तांत्रिक साधना आज भी जीवित है।

ऐसी स्थिति में "सिद्ध-साहित्य पर हिंदी और बंगला का समानाधिकार स्वीकृत कर सरहपा को दोनों का प्रथम कवि माना जा सकता है और यह हमारी सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। वस्तुत सिद्ध साहित्य समस्त पूर्वीय भारतीय भाषाओं के साहित्य का उद्गम स्थल है। श्री राहुल सांकृत्यायन ने भी इस मान्यता का समर्थन किया है—"यहाँ एक बात को हम और साफ कर देना चाहते हैं। हम जब इन पुराने कवियों की भाषा को हिन्दी कहते हैं, तो इस पर मराठी उड़िया, बंगला, आसामी, गोरखा, पंजाबी, गुजराती भाषा भाषियों को आपत्ति हो सकती है। लेकिन हमारा अभिप्राय हरगिज नहीं है कि यह पुरानी भाषा मराठी आदि की अपनी साहित्यिक भाषा नहीं है। उन्हें भी उसे अपना कहने का उतना ही अधिकार है, जितना हिन्दी-भाषा-भाषियों को।[१४]

नाथ-साहित्य

सिद्ध-साहित्य हिन्दी साहित्य का आदि उत्स है। फिर भी दोनों के बीच एक अन्तराय है, और यह अन्तराय नाथ-साहित्य का है। नाथ साहित्य को हम सिद्ध-साहित्य से संत-साहित्य को जोड़नेवाली शृंखला भी मान सकते हैं।

सिद्धों के अवशेष ने ही नवीन परिस्थितियों के अनुरूप आत्म संस्कार कर नाथ-पंथ का रूप धारण कर लिया था। चौरासी सिद्धों की जो संख्या प्रचलित है, उसमें नाथों का भी समावेश है।[१५] मच्छेन्द्रनाथ और गोरखनाथ की जो कथा प्रचलित है उससे यही विदित होता है कि मच्छेन्द्रनाथ सिद्धों की परम्परा के ही अवशेष थे। उनके शिष्य गोरखनाथ ने इस परंपरा

---

१४ हिन्दी काव्यधारा, अवतरणिका, पृ० ११-१२।

१५ ८४ सिद्धों के नाम "वर्ण रत्नाकर" शीर्षक मैथिली ग्रंथ में उपलब्ध हैं, जिसकी रचना-तिथि बारहवीं शताब्दी है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने "हिन्दी साहित्य" में पृष्ठ २६ से ३० तक बौद्ध-सिद्धों और नाथ-सिद्धों की तुलनात्मक तालिका दी है।

में क्रांतिकारी परिवर्त्तन कर एक नवीन मत का प्रवर्त्तन किया। बौद्ध साधना की विकृतियों को कठोरता से वहिष्कृत कर गोरखनाथ ने बुद्ध के स्थान पर शिव की उपासना का आरंभ किया। उन्होंने ब्रह्मचर्य, वाक्-संयम, सात्विक जीवन एवं आन्तरिक शुद्धि पर जोर दिया, किन्तु सिद्धों के हठयोग और शून्य-सिद्धान्त का त्याग नहीं किया, यद्यपि इस हठयोग का आधार पतंजलि का योग दर्शन है, और शून्य अलख निरंजन का पर्याय है।

हिन्दी के संत-साहित्य को नाथ-साहित्य से सम्बद्ध करने का श्रेय डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल को है। संत-साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में नाथ-साहित्य का महत्व प्रतिपादित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"इसने परवर्ती संतों के लिए श्रद्धाचरण-प्रधान पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। जिन संत साधकों की रचनाओं से हिन्दी-साहित्य गौरवान्वित है, उन्हें वहुत कुछ बनी बनाई भूमि मिली थी।"१६

गोरखनाथ की जो तथाकथित हिंदी कृतियां उपलब्ध हैं, यदि वे प्रामाणिक हैं तो उन्हें हम हिंदी गद्य का आदि प्रवर्त्तक मान सकते हैं।१७ पद्मावत में बालनाथ के टीले का उल्लेख, रत्नसेन का योगी होना, रत्नसेन को शिव की सहायता आदि कई बातें ऐसी हैं, जिनसे सूफी साहित्य पर भी नाथ-साहित्य का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है, भले ही वह अत्यंन्त क्षीण हो।

नाथों के साधना-केन्द्र पंजाब और राजस्थान में तो थे ही, पूर्वीय भारत में भी उनका व्यापक प्रभाव था।१८ "रत्नाकर जोपम कथा" के अनुसार मीननाथ के पुत्र मच्छेन्द्रनाथ कामरूप के कैवर्त्त थे। गोरखनाथ का उल्लेख भी प्राचीन वंगीय साहित्य में ससम्मान हुआ है, और चटगाँव के राजा गोपीचन्द्र और उनकी माता मैनावती की कथा तो प्रसिद्ध ही है।

राजा गोपीचन्द्र की कथा पूर्ववंग में अत्यंत लोकप्रिय है। श्री शिवनाथ शील ने वहीं से दुर्लभ मल्लिक के "गोपीचन्द्र-गीत" का अनुसंधान किया था। सन् १८०८ ई० में डा० ग्रियर्सन ने "गोपीचन्द्र राजार गान" का अन्वेषण किया था।"१९

---

१६. हिंदी साहित्य, पृ० ३०।

१७. गोरखनाथ की हिंदी कृतियों का अनुसंधान डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने किया था। इनमें से कुछ कृतियों का प्रकाशन हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा हुआ है। इन कृतियों की प्रामाणिकता संदिग्ध है।

१८. 'लिटरेचर्स इन माडर्न इन्डियन लैंग्वेजेज' में एस० के० बैनर्जी का बंगला साहित्य विषयक लेख, पृ० ६४, पूर्व वंग के भावानी दास और सुकुर महमूद ने भी इस विषय को लेकर काव्य-रचना की थी।

१९. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १४।

देव कृत 'रसविलास' सम्मत नायिका भेद

पुरुषोत्तम शर्मा

साहित्य के क्षेत्र में नायक-नायिका (विशेषत नायिका) भेद को रस चर्चा, सरचना एव सयोजना के एक अत्यत महत्त्वपूर्ण अङ्ग के रूप में स्वीकारा गया है। महत्त्व की दृष्टि से यह विषय अनुपेक्षणीय, रस-चर्चा के लगभग समकक्ष एव रसराज शृगार का अभिन्न अङ्ग है। 'वाणी का सार तत्त्व शृगार रस में निहित है और शृगार का सार किशोर-किशोरियों (नायक-नायिकाओं) में।'[1] काव्य का मुख्य एव महनीय रस वस्तुत शृगार ही है। अन्य सभी रस या तो उसके क्षेपक हैं अथवा उससे सदर्भित। शृगार रस भारतीय रस साधना का श्रेष्ठतम प्रतिपाद्य है। इस प्रकार के उच्चकोटि के रस से सम्बन्धित एव सपर्कित होने के कारण साहित्यशास्त्रीय परपराओं में नायिका भेद को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

हिन्दी साहित्य में इस विषय से सबधित जो समृद्ध एव विशाल परपरा दृष्टिगोचर होती है वह स्पष्टत सस्कृत साहित्यशास्त्रीय परपराओं से प्रभावित है। नायक-नायिका भेद से सबधित अध्ययन का सूत्रपात सस्कृत साहित्य में मुख्यत तीन स्रोतों के माध्यम से हुआ है—

(क) कामशास्त्रीय ग्रन्थ।

(ख) नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ।

(ग) काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ।

कामशास्त्रीय ग्रन्थों में सर्वाधिक-प्रसिद्ध ग्रन्थ वात्स्यायन मुनि प्रणीत 'कामसूत्र' है जो कि लगभग ३०० ई० पू० की रचना है।[2] इस ग्रन्थ में नायिका भेद की चर्चा प्रचुर मात्रा में हुई है।[3] इसी संदर्भ में कामसूत्रकार ने कतिपय पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का उल्लेख भी किया है।[4] वात्स्यायन मुनि का यह उल्लेख इस तथ्य का प्रकट प्रमाण है कि उनसे पूर्व भी नायिका भेद की परपरा का प्रचलन था। स्वय वात्स्यायन तथा उनके पूर्ववर्ती एव परवर्ती आचार्यों[5] द्वारा स्वीकृत एव निरूपित नायिका-भेद का आधार विशुद्ध काम-भावना एव यौनाकर्षण

---

१ 'वाणी को सार बखान्यौ सिगार, सिंगार को सार किसोर किसोरी।'—देव।

२ देखिये, सोशल लाइफ इन एन्शियन्ट इडिया, प्रो० चाकलदार।

३, कामसूत्र, पचम अध्याय।

४ नन्दिकेश्वर, बाभ्रव्य, दत्तक, चारायण, सुवर्णनाभ, घोटकमुख, गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, कुचुमार एव औद्दालक आदि।

५ ज्योतिरीश्वर (पंच सायक), कोकोक (रतिरहस्य), कल्याणमल्ल (अनग रग) तथा जयदेव (रतिमञ्जरी) आदि।

है। उनके समक्ष नायिका 'रमणी' मात्र है। संभवतः इसीलिये उनके द्वारा वर्णित नायिका-भेद दैहिक, स्थूल एवं मांसल अधिक है और मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक बहुत कम।

नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नायिका-भेद का उल्लेख सर्वप्रथम महामुनि भरत कृत 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है।६ इस विषय की उत्पत्ति नाट्शास्त्र के आलम्बन-विभाव७ से मानी जाती है। भरत के परवर्ती नाट्यशास्त्रियों एवं टीकाकारों ने भी इस विषय का विस्तृत निरूपण किया है।८ भरत एवं उनके परवर्ती आचार्यों द्वारा वर्णित यह नायिका-भेद ही काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित बहु-विस्तृत नायिका-भेद की आधार-शिला के रूप में प्रयुक्त हुआ है। नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित नायिका-भेद के मूल में अभिनय संबंधी दृष्टिकोण है। इसीलिये इन ग्रंथों में वर्णित नायिकाओं में नटी अथवा अभिनेत्री भाव की प्रतीतिं ही अधिक है। किन्तु फिर भी इन ग्रंथों का वर्गीकरण एवं विवेचन कामशास्त्रीय ग्रन्थों की तुलना में कहीं अधिक व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक है।

काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में नायिका के भेदों-विभेदों का अत्यन्त विस्तृत निरूपण किया गया है। इस क्षेत्र में इस विषय के सर्वप्रथम निरूपक संभवतः आचार्य रुद्रट हैं।९ इस विषय के अत्यधिक प्रसिद्ध आचार्य विश्वनाथ एवं भानुदत्त मिश्र पर भी रुद्रट का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। नायिका भेद को काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में पूर्णतः विकसमान रूप प्रदान करने का श्रेय साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ कविराज को है। कालान्तर में आचार्य भानुदत्त मिश्र के ग्रन्थों (रसमंजरी एवं रसतरङ्गिणी) में लगभग इस एक ही विषय का विस्तार एवं विवेचन हुआ है और नायिका भेद तथा आचार्य भानुदत्त पर्यायवाची से हो गये हैं। 'साहित्य-दर्पण' के परवर्ती काल में इस विषय से सम्बद्ध एक अत्यंत समृद्ध परंपरा का प्रचलन हो गया

---

६. नाट्यशास्त्र, २४, २०३-२०४।

७. यमालम्ब्य रस उत्पद्यते स आलम्बन विभावः।
—रसतरंगिणी, भानुदत्त मिश्र, द्वितीय तरंग।

८. सागर नन्दी (नाटक-लक्षण रत्नकोष, १७,२५१७ से २५९४), अभिनवगुप्त पादाचार्य (अभिनव भारती) धनंजय (दशरूपक, २,९२ से १११), रामचन्द्र गुणचन्द्र (नाट्यदर्पण, ४, १७२ से १८१)।

९. काव्यालङ्कार, रुद्रट, १२-१६ से ४७ तथा श्लोक ४० और ४१ के बीच में आये हुए १४ प्रक्षिप्त श्लोक।

था।१० यहा तक कि रूप गोस्वामी प्रभृति धार्मिक आचार्यों ने भी 'उज्ज्वल रस' (जो कि शृगार रस का धार्मिक रूप है) के सदर्भ मे नायिकाओं (गोपिकाओं अथवा गोपागनाओं) की विभिन्न कोटियों की चर्चा की है।११ हिन्दी साहित्य के उत्तर-मध्यकाल (रीति अथवा शृगार काल) में निरूपित नायिका भेद सर्वाधिक इसी कोटि के ग्रथों से प्रभावित है।

नायिका भेद जैसे इस महत्त्वपूर्ण विषय का (जैसे कि पहले भी कहा गया है) विस्तृत एव औचित्यपूर्ण निरूपण इन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में ही सभव हो सका। ग्रथों की इस परपरा में शृगार के एक अत्यत महत्त्वपूर्ण अग के रूप में इस विषय को स्वीकारा गया और शृगार ही के सदर्भ में उसके प्रत्येक पक्ष, रूप, भाव, विभाव, अनुभाव अथवा दशा के अनुसार नायिकाओं की विभिन्न मानसिक एव कायिक (आङ्गिक वाचिक आदि) स्थितियों तथा दशाओं का बहुविध चित्रण किया गया। इन ग्रन्थों में वर्णित नायिका भेद का सर्वाधिक महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि कालान्तर में इसी विवेचन के आधार पर एक पूर्ण एव पृथक् शास्त्र के रूप में 'नायिका शास्त्र' की परिकल्पना का प्रादुर्भाव हुआ।

यदि नायिका भेद को एक स्वतत्र विषय के रूप मे स्वीकार कर लिया जाय तो कहा जा सकता है कि 'स्त्रियों की प्रकृति, अवस्था, स्थिति आदि के अनुरूप विविध मनोदशाओं का अध्ययन ही नायिका-भेद का मूल आधार है। आयु के विविध स्तर, विरह की दशा, सयोगावस्था की भावनाएँ, नायक की अन्यासक्ति आदि नायिका को मनोवृत्ति पर क्या प्रभाव डालते हैं, इन सब प्रश्नों का वैज्ञानिक एव तर्कसगत उत्तर नायिका भेद देता है'।१२ विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से इस विषय की सामान्य स्वीकृत पाँच मान्यताएँ१३ हैं—

(क) इस विषय के अतर्गत सामान्य तथा स्वाभाविक रति-भावना को, अर्थात् स्त्री-पुरुष के रति-सबध को ही लिया गया है।

(ख) यौवन-युक्त तथा आकर्षक स्त्री पुरुषों के प्रेम को ही स्वीकार किया गया है।

---

१० द्रष्टव्य—(क) साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, ३-५६ से ८७।
(ख) शृगारतिलक, भोजराज रस-प्रकरण के अतर्गत।
(ग) भावप्रकाशनम् शारदातनय, चतुर्थोधिकार एव पचमोधिकार।
(घ) रसार्णव, शिङ्गभूपाल, तथा वागभट्ट (प्रथम एव द्वितीय) एव आचार्य हेमचन्द्र की 'काव्यानुशासन' प्रभृति रचनाएँ।

११ उज्ज्वल नीलमणि, नायिका भेद प्रकरण (५), श्लोक सं० १०८ से १४३।

१२ गाथा सप्तशती (रीतिकालीन कवियों के सदर्भ में), डा० परमानन्द शास्त्री, पृ० १३४।

१३. हिन्दी साहित्य कोश (भाग १), डा० राकेश गुप्त की टिप्पणी, पृ० ४३१।

(ग) रसबोध की दृष्टि से सामाजिक मर्यादा का भी सामान्यतः ध्यान रखा गया है।

(घ) स्त्री-पुरुष दोनों में रति-भावना अनिवार्य मानी गई है।

(ङ) प्रेम के अतिरिक्त अन्य किसी प्रसंग को इसके अंतर्गत नहीं लिया गया है।

सम्भवतः कामोन्नयन, प्रेम, यौवन एवं यौनाकर्षण आदि नायिका भेद के दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार हैं।

हिन्दी साहित्य का उत्तरमध्यकालीन (रीति अथवा श्रृंगारकालीन) व्रजभाषा का साहित्य मूलतः एवं मुख्यतः श्रृंगार-रस का साहित्य है और इसी संदर्भ में नायक-नायिका भेद का भी। श्रृंगार रस के विविध पक्षों के विभिन्न संदर्भों में नायिका भेद का अधिकतम विकास एवं विस्तार इसी काल में हुआ है। हिन्दी साहित्य का यह काल संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपराओं से अत्याधिक प्रभावित है। एक दृष्टि से इस युग में विरचित लाक्षणिक-साहित्य संस्कृत के आप्त ग्रन्थों का छायानुवाद मात्र है। रीति-काव्य में बहुवर्णित एवं चर्चित नायिका-भेद भी एक ऐसा ही विषय है।

इस तथ्य को स्वीकार कर लेने के अनन्तर भी कि हिन्दी नायिका शास्त्र संस्कृत की तत्संबंधी परंपराओं का लगभग अनुवाद ही है, इसमें मौलिकता के अभाव को नहीं स्वीकारा जा सकता। मौलिकता की दृष्टि से नहीं तो कम से कम विस्तार की दृष्टि से इसका महत्व अवश्य है। रीतिकाल में रचित रस (श्रृंगार) निरूपक ग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य वस्तुतः नायिका-भेद ही है। आचार्य कवि देव कृत 'रसविलास' इसी कोटि की रचना है।

साहित्य के परिप्रेक्ष्य में भाव-संबद्ध अनुरंजन पक्ष की दृष्टि से रीति काव्य का विशेष महत्त्व है। इस काल का साहित्य वस्तुतः कलाविदग्ध एवं परिष्कृत रुचिशाली सहृदय नागरों का साहित्य है। समाज-प्रवाह की पीठिका को ध्यान में रखते हुए इस काल के साहित्य में श्रृंगारिक-भावनाओं-विभावनाओं की झंकृति अपने स्वाभाविक माधुर्य के साथ प्रकट हुई है।

रीति काव्यधारा के सुपरिचित कवि एवं 'रसविलास' के रचयिता कवि देव (देवदत्त) हिन्दी साहित्य की इस जीवन्त परंपरा की अपूर्व देन हैं। हिन्दी के सूक्तिकार आलोचकों ने उनकी तुलना 'नभमण्डल'[१४] से की है। संभवतः उनके भाव-पक्ष एवं रचनाओं के वैशद्य के कारण।

---

१४. सूर-सूर तुलसी सुधाकर नछत्र केसो, सेस कविराजन को जुगनू गनाय कै।
कोउ परिपूरन भगति दरसायो अब काव्य रीति मोसन सुनहु चित्त लाय कै।

देव की रचनाओं में "रसविलास" (१७२६ ई०) जो भोगीलाल नामक किसी 'लाखन खरचि रचि आखर खरीदने' वाले उदार आश्रयदाता के मनोविनोद के लिये लिखा हुआ, नायिका भेद का ग्रंथ है।"१५ सामान्यत इस रचना को देव की दो अन्य कृतियों—'भवानीविलास' एव 'जातिविलास' का ही सयुक्त, परिष्कृत एव परिवर्द्धित सस्करण माना जाता रहा है।१६ किन्तु हिन्दी साहित्यकाश भाग २' मे 'रसविलास' सबधी उल्लिखित टिप्पणी (पृ० ४५१) के लेखक (डा० जगदीश गुप्त) ने श्री लक्ष्मीधर मालवीय लिखित एक अप्रकाशित ग्रन्थ१७ की मान्यताओं के आधार पर यह सिद्ध किया है कि 'रसविलास' वस्तुत 'जातिविलास' प्रभृति ग्रन्थों का परिवर्द्धित एव परिष्कृत रूप नहीं है, बल्कि इसके विपरीत 'रसविलास' को ही किसी खडित प्रति का नाम भ्रमवश 'जातिविलास' कर दिया गया है। नाम सबधी इस भ्रम का मूल कारण 'रसविलास' का जो दोहा१८ है, उसके सबध में यह अनुमान किया जाता है कि इसमें व्यवहृत 'जातिविलास' शब्द ग्रन्थवाची न होकर मात्र विषय का परिचायक है। इस सदंध मे भ्रम का एक अन्य कारण 'विलास' शब्द का विचित्र एव बहुविध प्रयोग भी है, जो कि तत्कालीन और विशेषत देवकृत अधिकाश ग्रन्थों के नामकरण में प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण ग्रन्थ के किसी भी विलास के अन्त में 'जाति' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, सर्वत्र 'रस-विलास' सज्ञा-रूप का ही प्रयोग हुआ है।

जैसा कि ग्रन्थ के नाम से प्रतिभासित होता है, इसका प्रतिपाद्य वस्तुत रस नहीं है अपितु रस के सदर्भ में नायिका-भेद है। 'रस' से देव का अभिप्राय सभवत सरसता से है। 'इस

देव नभमण्डल समान है कवीन मध्य जापैमै भानु सित भानु तारागन आयकै।
उदै होत अथवत चारों ओर भ्रमत पै ताको ओर छोर नहिं परत लखायकै॥
—'सुखसागर तरग' (भूमिका) प० बालाजी दत्त मिश्र कृत कवित्त।

१५ हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २०५-२०६।

१६ देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० ४९।

१७ देव के लक्षण ग्रन्थों का पाठ और समस्याएँ, डा० लक्ष्मीधर मालवीय।
(इस ग्रन्थ का प्रथम भाग 'देव ग्रन्थावली' (प्रथम भाग) के नाम से प्रकाशित हो चुका है।)

१८ देवल रावल राजपुर नागरि तरुनि निवास।
तिनके लक्षन भेद सब बरनत जाति विलास॥— रसविलास, १ ७।

ग्रन्थ में लक्षण—(निरूपक) १३४ दोहों के अतिरिक्त २१६ कवित्त और सवैया हैं—परन्तु इनमें अधिकांश 'भवानी विलास' और 'जातिविलास' से उद्धृत हैं (?) ।१९ संपूर्ण ग्रन्थ में सात-अध्याय (विलास हैं और प्रत्येक विलास में किसी नवीन एवं भिन्न आधार पर नायिकाओं का वर्णन एवं वर्गीकरण किया गया है और इसके साथ ही संदर्भ एवं प्रसंगानुकूल सखी, दासी एवं दूती-कर्म वर्णन, तथा नायिकाओं के रूप-शील तथा संयोग एवं वियोग की दशाओं तथा अवस्थाओं आदि के भेद-प्रभेदों आदि विषयों की चर्चा भी हुई है।२०

कुल मिला कर 'रसविलास' नायिकाओं के व्यवहार-विलास के एक महत्वपूर्ण कोश-ग्रन्थ की मर्यादा का अधिकारी है। इसीलिये रीतियुगीन ग्रन्थ-परंपरा में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

नायिकाओं के विविध भेद-प्रभेदों की ओर अग्रसर होने से पूर्व कवि देव ने नारी के महत्व पर प्रकाश डाला है। संभवतः नारी का यह महत्व-निरूपण ही देव सम्मत 'शृंगार सिद्धान्त' भी है। "विश्व में 'युक्ति' (योग-साधना) इस लिये महत्वपूर्ण है कि उस से 'मुक्ति' की प्राप्ति होती है। मुक्ति की उपादेयता 'भुक्ति' (भोग अथवा आनन्द) की प्राप्ति में है। परन्तु इन तीनों—युक्ति, मुक्ति और भुक्ति, के मूल में केवल 'काम' है। कामपूर्ति के अभाव में मानव के सम्मुख 'परमपद' (संभवतः कैवल्यपद) भी तुच्छ है, और काम-कामना की पूर्ति करती है 'रमनी राका ससिमुखी'। इसीलिए सुर, असुर, मानव, पशु, कृमि-कीट, राक्षस, यक्ष, पिशाच एवं नाग आदि सभी रमणी-संसर्ग से आनन्दित होते हैं।"२१

विश्व में नारियों की असंख्य कोटियाँ हैं और उन के भी कोटि-कोटि भेद-विभेद हैं। उन सब में से 'माया मानुषी' का वर्णन करना कवि देव को अभिप्रेत है।२२ निश्चित रूप से कुछ कहना तो कठिन है, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि 'रसविलास' के प्रणयन के मूल में कवि देव का कुछ ऐसा ही ध्येय निहित है।

---

१९. देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० ४९।

२०. द्रष्टव्य—(क) रसविलास, १—३१ से ५४।
(ख) वही, संपूर्ण सप्तम विलास।
(ग) वही, संपूर्ण चतुर्थ विलास।

२१. रसविलास, १—२ से ४।

२२. वही, १—५।

ग्रन्थ के आरम्भ में (जहां से नायिका-निरूपण का आरम्भ होता है।) नारी (नायिका) के—नागरी, पुरवासिनी, ग्रामीण, वनवासिनी, सैन्या तथा पथिकतिय नामक छ भेद किये गए हैं। इन भेदों का भेदक-आधार 'आवास' है।२३

नागरी नायिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं—देवल, रावल तथा राजपुरिका।२४

देवल नागरियों में—देवल देवो (उदाहरणार्थ सिंहवाहिनी दुर्गा) अर्थात देवालय स्थित देवी, पूजनहारि (पुजारिन) एवं द्वारपालिका की गणना होती है।२५

रावल नायिकाओं के पांच भेद हैं—राजकुमारी, धाय, दूती, सखी और दासी।२६ दूतियों में—धाय, सखी, दासी, नटी, ग्वालिन, शिल्पिनी, मालिन, नाइन की बिटिया, पटवा की स्त्री, सन्यासिनी, भिक्षुणी तथा किसी राज सबधी की भाया आदि की गणना की गई है।२७ इस प्रसग में लगभग ऐसी ही चर्चा कामाचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने भी की है।२८ सखी के सबध में देव का कथन है कि किसी निकटवर्ती राज-संबंधी (राजानुज के कर्मकाण्डी आचार्य), अथवा कुलगुरु की आत्मजा ही राजतनया (नायिका) की सखी हो सकती है।२९

द्वितीय विलास में राजनगर निवासिनी विभिन्न नायिकाओं का वर्णन है। इस विलास के प्रतिपाद्य का आधार 'वर्णाश्रम व्यवस्था' है।

राजनगर की नायिकाओं में 'हटवाइन' और 'गणिका' प्रमुख हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त —'जौहरिन, छीपनि, पटवनि, सुनारी, गन्धिनी, तेलिनि, तमोरिनि, किन्दुनि, बननि, कुम्हारि, दरजिनी एव चूहड़ी आदि भी इसी वर्ग की नायिकाएँ हैं।३०

---

२३ वही, १—६।
२४, वही, १—७।
२५ रसविलास, १—२ से ४।
२६ वही, १—१२।
२७, वही, १—१९ तथा २०।
२८ दासीवारवधूर्नटी च विधवा बाला च धात्री तथा।
कन्या प्रव्रजिता च भिक्षुवनिता सम्बन्धिनी शिल्पिनी॥
मालाकार नितम्बिनी प्रतिसखी दौत्ये स्मृता योषित'।
आलाप्या कविभि सदैव मदन व्यापारलीलाविधौ॥—पचसायक', ४—२१।
२९ रसविलास, १—२५।
३० वही, २—२, ६ और ७।

तृतीय विलास पुरवासिनी नायिकाओं को समर्पित है। 'राजनगर (संभवतः इस शब्द का अभिप्राय राजप्रासाद से है।) के एक ओर बसा हुआ उपनगर 'पुर' कहलाता है'।३१ इस पुर में विभिन्न जातियां निवास करती हैं। इस लिये 'जाति भेद' के आधार पर ही—'ब्राह्मणी, क्षत्राणी, रजपूतानी, खतरानी, कायथनि, सुद्राणी, नाइनि, मालिनी, धोबिनि' नायक नायिकाओं का निरूपण किया गया है।३२

इसी विलास में 'ग्रामिणी' नायिकाओं का वर्णन भी है। 'वन-प्रान्त में बसे हुए किसी लघुपुर को 'ग्राम' (गांव) कहा जाता है।'३३ इस लघुपुर में—'अहिरनि, काछिनि, कलारिनि, कहारिनि तथा नूनेरी नायिकाएँ निवास करती हैं।३४ इस वर्गीकरण का आधार 'व्यवसाय-भेद' है।

'ग्रामिणी' नायिकाओं के वर्गीकरण के अनन्तर वनवासिनी नायिकाओं—'मुनितिय, व्याधतिय एवं भीलनि' का वर्णन है।३५

प्रस्तुत विलास के अन्त में 'सेन्या' नायिकाओं का प्रसंग उठाया गया है। 'कटक (समूह अथवा 'टोला') में रहने वाली नायिकाएँ—वृषली, वेश्या एवं मुकेरनि, सेन्या कहलाती हैं।३६

'पथिकों' (यह शब्द यहां उर्दू शब्द 'खानाबदोश' के पर्याय के रूप में लिया गया है।) की वधूओं को भी 'पथिकवधू' की संज्ञा से अभिहित करके आचार्य देव ने उन्हें नायिकाओं के रूप में स्वीकारा है। 'बनिजारनि, जोगिनि, नटी तथा कंघेरिनि' इसी कोटि की नायिकाएँ हैं।३७

यद्यपि चतुर्थ विलास में नायिकाओं के वर्गीकरण का विवरण नहीं है, किन्तु फिर भी इसका सर्वाधिक महत्व है। इस विलास में नायिका के लक्षण एवं उनके गुण, रूप, शील, कुलाचार तथा अलंकरण आदि का निरूपण है। यह निरूपण मनोवैज्ञानिक आधार पर वर्गीकृत दो नायिकाओं—अज्ञात यौवना तथा ज्ञात यौवना३८ के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

---

३१. वही, ३—२।
३२. वही, ३—५ से १६।
३३. वही, ३—१७।
३४. वही, ३—१९ से २३।
३५. वही, ३—२५ से २७।
३६. वही, ३—२८ से ३१।
३७. वही, ३—३२ से ३६।
३८. वही, ४—१० तथा १२।

देव के मतानुसार अष्टांगवती वनिता ही वस्तुत नायिका पद की अधिकारिणी है।३९ परन्तु ये आठ गुण कौन कौन से हैं, इसका उत्तर भी देव ने दिया है।४०

सामान्यत शृङ्गार के आलम्बन नायक नायिका होते हैं, किन्तु फिर भी विशेष महत्व नायिका का ही है। अभिनवगुप्तपादाचार्य ने भी भरत-सूत्रों की व्याख्या करते हुए नायिकाओं के प्रसग में 'स्त्रीति नामापि मधुरम्' जैसी उक्ति कही है। शृगारप्रकाशकार ने भी 'नामापि स्त्रीति सह्लादि विकारोत्येव मानसम्' जैसी उक्ति के माध्यम से स्त्री (नायिका) को महनीयता प्रदान की है। आद्याचार्य भरत ने भी स्त्री को सुख का मूल माना है। अतएव नायिका में वैशिष्ट्य की प्रतीति स्वाभाविक है।

देव के नायिका लक्षण को ध्यान में रखते हुए तत्सम्बन्धी तनिक विशद् विचार अपेक्षित है। दशरूपककार ने इस विषय में केवल इतना ही कहा है कि नायिका, नायक के ही सामान्य गुणों से युक्त होती है।४१ 'नायक' के प्रसग में उसके गुणों की चर्चा धनञ्जय ने विस्तृत रूप में की है।४२ इन सब उद्धरणों के आधार पर देव का नायिका को 'अष्टांगवती' मानना युक्ति सगत प्रतीत होता है।

पचम विलास में विभिन्न आधारों—जाति, कर्म, गुण, देश, काल, वय क्रम, प्रकृति एव सत्त्व के अनुसार नायिकाओं के आठ भेद किये गये हैं।४३

---

३९ जा कामिनी महिं देखिये पूरन आठहु अग।
ताही बरनै नायिका त्रिभुवन मोहन रग॥
—रसविलास, ४—७।
(तुलनीय) उपजति जाहि विलोकि कै चित्त बीच रस भाव।
ताहि बखानत नायका जे प्रवीन कविराव॥
—रसराज, मतिराम, १—५।

४० पहिलें जोबन रूप गुन सील प्रेम पहिचानि।
कुल वैभव भूषण बहुरि आठौं अङ्ग बखानि॥
—रसविलास, ४—८।

४१ स्वान्यासा साधारणस्त्रीति तद्गुणानायिका त्रिधा।—दशरूपक, २-१५।

४२ नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्ष प्रियवद।
रक्तलोक शुचिर्वाग्मी रूढवश स्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामान समन्वित।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिक॥—दशरूपक, २, १ और २।

४३, रसविलास, ५-३।

जाति-भेद के अनुसार, जैसा कि कामशास्त्रीय ग्रन्थों४४ में भी कहा गया है, नायिका की चार-कोटियाँ होती हैं—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी। रसविलास में इन भेदों को परंपरानुमोदित रूप में ही स्वीकारा गया है।४५

कर्म-भेद के आधार पर नायिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या।४६

भारतीय-चिन्तन-परंपरा में सत्व, रजस् और तमस् नामक तीन प्रकार के मानसिक गुण माने गये हैं। काव्यशास्त्रकारों ने इन शाश्वत मानसिक गुणों के आधार पर नायिकाओं का विभाजन करते हुए सात्विक प्रकृतिशीला नायिका को उत्तम, रजस् (अथवा रजोगुण) प्रधान्या को मध्यम एवं तामसिक वृत्तिशालिनी को हीन कोटि की नायिका माना है। देव ने भी ऐसा ही किया है।४७

कामशास्त्रीय परंपराओं के आधार पर परवर्ती नायिकाशास्त्र में 'देश-भेद' के आधार पर भी नायिकाओं का वर्गीकरण किया गया है। इस श्रेणी के भेद-विभेदों का आधार प्रान्त अथवा प्रदेश विशेष की जलवायु, सामाजिक परंपराएँ, अंगविन्यास एवं आकार, मानसिक प्रकृति, मदन वेग तथा रति-क्षमता आदि हैं। देव ने भी ज्योतिरीश्वर ठाकुर एवं कल्याणमल्ल की भाँति नायिकाओं के—'मध्यदेश वधू, मगध वधू, कोशल वधू, पाटल वधू, उत्कल वधू, कलिङ्ग वधू, कामरूप वधू, वंग वधू, विन्ध्यवन वधू, मालव वधू, आभीर वधू, विराट् वधू, कुङ्कल (संभवत: कोंकण) वधू, करैल (केरल) वधू, द्राविड़ वधू, तैलङ्ग वधू, कर्नाटक वधू, सिन्धु वधू, गुजरात वधू, मारवाड़ वधू, कुरुदेश वधू, कुरमी वधू, पर्वत वधू, भुटन्त वधू, काश्मीर वधू, एवं सौवीर वधू नामक भेदों को स्वीकारा है।४८

षष्ठम् विलास में भी नायिकाओं के उन्हीं भेद-विभेदों का विस्तार है जिनकी चर्चा पंचम विलास (५-३) के अंतर्गत की जा चुकी है।

---

४४. पद्मिनी चित्रिणी चैव शङ्खिनी हस्तिनी तथा।—रतिमञ्जरी, जयदेव, ३।

४५. रसविलास, ५-५ से १२।

४६. वही, ५-१३ से १९।

४७. वही, ५-२० से २३।

४८. (क) पंचसायक २-१६ से २८।
(ख) अनङ्गरङ्ग, पंचम अध्याय।
(ग) रसविलास, ५-२४ से ५०।

काल भेद के अनुसार काव्यशास्त्रानुमोदित परंपराओं के आधार पर स्वाधीनपतिका, कलहन्तिरता, अभिसारिका, विप्रलब्धा, खण्डिता, उत्कंठिता, वासकसज्जा एवं प्रोषितपतिका आदि आठ प्रकार की नायिकाएँ होती हैं।४९ इसके अतिरिक्त इसी प्रसंग में प्रवत्स्यप्रेयसी एवं आगम अथवा आगतपतिका नाम्नी नायिकाओं का उल्लेख भी हुआ है।५०

वयःक्रम के आधार पर देव ने—मुग्धा, मध्या एवं प्रगल्भा नामक तीन प्रकार की नायिकाओं का अस्तित्व स्वीकारा है।५१

प्रकृति के आधार पर नायिकाओं के तीन भेद हैं—आयुर्वेदशास्त्र ने मानव-शरीर में—वात, पित्त और कफ नामक तीन प्रकृतियों की उपस्थिति और प्रत्येक मनुष्य में इनमें से किसी एक प्रकृति की मुख्यता को स्वीकारा है। इसी आधार पर अन्य आचार्यों की भाँति देव ने भी वात, पित्त एवं कफ प्रकृति-प्रधाना नायिकाओं को मान्यता दी है।५२

'सत्त्व' के आधार पर नायिकाओं का वर्गीकरण करने के प्रसंग में देव का मुख्य उपजीव्य कामशास्त्रीय परंपराएँ ही रही हैं। 'सत्त्व' शब्द 'स्वभाव' का पर्याय है। काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में केवल—सुर, गंधर्व, यक्ष एवं प्रेत को ही सत्त्व रूप में स्वीकारा गया है।५३ किन्तु देव की सत्त्वनामावली में उपर्युक्त चारों सत्त्वों के अतिरिक्त किन्नर, नर, पिशाच, नाग, खर, कपि एवं काग आदि की गणना भी की गई है।५४

सप्तम विलास में शृंगार के ऐसे पक्षों एवं तत्त्वों—हाव, दस-दशाएँ, तथा अनुभाव आदि का विवेचन है, जिनका सम्बंध अप्रत्यक्षत नायिका भेद से है।

उपर्युक्त संक्षिप्त एवं असंगठित सर्वेक्षण में 'रसविलास' में वर्णित नायिका-भेद का परिचय मात्र प्रस्तुत किया गया है। इस विषय के सूक्ष्म पक्षों का विश्लेषणात्मक अध्ययन विस्तारभय से प्रस्तुत नहीं किया जा सका। उसे देव के सभी नायिका भेद निरूपक ग्रन्थों में वर्णित नायिका भेद के विशद् विश्लेषण के साथ अन्यत्र प्रस्तुत किया जा रहा है। विषय इतना व्यापक, विशाल एवं वैविध्यपूर्ण है कि विश्लेषणात्मक दृष्टि से उसे सुसम्बद्ध बनाने के लिये जितनी आवश्यकता श्रम, अध्ययन एवं चिन्तन की है उससे कहीं अधिक है धैर्य की।

---

४९ रसविलास, ६ २ से २०।

५० वही, ६-२१ से २४।

५१ वही ६-२५ से ३३।

५२ रसविलास, ६ ३८ से ४४।

५३ पंचसायक, १ २९ से ३२।

५४ रसविलास, ६-४५ से ५६, (तुलनीय) अनङ्गरङ्ग, चतुर्थ अध्याय।

मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं का सृजन-विज्ञान

गुरुचरण सिंह मोंगिया

हिन्दी के नये काव्य में अज्ञेय जहां इकेवाना कला के गीतिमय सौन्दर्यात्मिक सन्दर्भों से सम्पन्न छोटी 'जापानी शैली' की 'हाइकू' अर्थात् लघु कविताओं के लिए अपना अकेला स्थान रखते हैं वहां उन्हीं के एक तारसप्तकीय सहचर गजानन माधव मुक्तिबोध का महत्त्व अपनी महाकाव्यात्मक आयामों से सम्पन्न, दूरगामी संदर्भों को छूनी हुई, पथरीली पहाड़ी नदी की तरह बहती हुई लम्बी कविताओं के कारण अनुपम तथा अपूर्व हैं। दोनों कवि समकालीन रहे किन्तु उनकी अभिव्यक्ति का रूपाकार इतना भिन्न रहा कि आज हम उन दोनों के नाम से दो अलग अलग 'प्रवृत्तियों' का उल्लेख कर सकते हैं। अज्ञेय का लघु मानवीय सृजन चिंतन जहां छोटे छोटे द्वीपान्तरों में अपने कथ्य को अभिव्यक्ति देकर आत्मतुष्ट हो जाता है ; मुक्तिबोध का विराट कल्पना चित्रों से युक्त खुला मैदानी कथ्य अपने अनाशंसित विस्तार में भी निरन्तर अधूरा और असन्तुष्ट रहता है। यही छोटो और लंबी कविताओं का सापेक्षिक सृजन रहस्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज के युग की विश्लिष्ट समस्याओं के विराट रूप को व्यक्त करने के लिए छोटे साँचे अपर्याप्त सिद्ध हो रहे हैं। मुक्तिबोध को लम्बी कविताओं के प्रसंग में रमेश बक्शी ने लिखा है :

'मुक्तिबोध बहुत लम्बी कविता लिखते हैं, लिखना शुरू करते हैं तो कविता समाप्त ही नहीं होती। मुक्तिबोध चाय बहुत पाते हैं, पोते हैं तो पीते ही चले जाते हैं। मुक्तिबोध सिगरेट बहुत पीते हैं......एक से लगी दूसरी, दूसरी से लगी तीसरी। मुक्तिबोध बात (बहस) बहुत लम्बो करते हैं......खतम होने को ही नहीं आनी। एक दिन पूछा था : इन लम्बी कविताओं का राज़ क्या है ? उत्तर हंसी से दबा चेहरा था......'नदी बहने लगती है तो वहे चली जानी है। नदी की लम्बाई का राज़ कौन बताए अब' ?

मुक्तिबोध स्वयं अपनी लम्बी नागात्मक कविताओं का राज़ खोजते खोजते पूर्ण हो गए लेकिन...उनकी बात अधूरी ही रह गई। अब यह चुनौती रामस्वरूप चतुर्वेदी के कथनानुसार उनके किसी 'सहानुभूतिपूर्ण समीक्षक' को ही निभानी होगी कि उनकी लम्बी और अधूरी सृजन प्रक्रिया का रहस्यान्वेषण करे। उनके (अनात्मसजग) सृजन सूत्रों की सहायता से हम यह रहस्याभिज्ञान करने का प्रयास करेंगे। सह-अनुभूनि के साथ।

मुक्तिबोध ने अपनी कविता को 'अधूरी दीर्घ कविता' कहा है। यह उनकी आदत नहीं कि वह अपनी कविताओं को इतनी लोच देते हुए भी उन्हें अधूरी ही छोड़ देते हैं बल्कि यह

इस गतिशील यथार्थ के दबाव की ही विवशता है कि वह छोटी कविताए नहीं लिख पाते और जो छोटी होती है, वह वस्तुत छोटी न होकर अधूरी होती हैं।

मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं का यह रहस्य उनके व्यक्तित्व के साथ जुड़ा है। जीवन में भी वह छोटी छोटी घटनाओं को कोई महत्त्व नहीं देते थे और उनका समस्त लक्ष्यवाद ऐसा होना था जो काफी धैर्य की अपेक्षा रखता हो। यह प्रतीक्षा का धैय उनमें था। क्यों कि वह जानते थे कि यह प्रतीक्षाकाल निष्क्रिय न होकर सृजनात्मक होता है। इस काल में हर सृजन स्थिति का निरन्तर आत्मपरीक्षण तथा आत्मालोचन चलता है जो कविता के पुन सम्पादन तथा सशोधन में सहायक बन कर आता है। यह आत्मालोचन तथा आत्मपरीक्षण दोनों 'सुपरइगो' के श्रेष्ठ तत्व हैं, इस आत्मपरीक्षण का मूल कारण असतोष है जो कवि के जीवन में मूलबद्ध है। सुकरात ने सतोष को शूकर पुत्र का चिह्न बताया था। असन्तोष से ही सृजन की प्रगति सम्भव है और प्रगति अपने आप में एक ऐतिहासिक तथा दीर्घ प्रक्रिया है, शीर्षक-व्यापार नहीं। मुक्तिबोध अपने आप में ही एक लम्बी कविता थे 'बहुत कम पढ़ी जाने वाली, कभी कभी ही छपने वालो'। वह क्षणवादो या अवसरवादी नहीं थे। लड़ना तो चाहते थे लेकिन अच्छे तरीक से। बेगार टालना उन्हें नहीं आता था। अपने को ही काटते-छीलते रहने के कारण वह जल्दी ही कोई निर्णय नहीं ले पाते थे द्रुतविवेक के इस अभाव के कारण ही वह पश्चात्पद रह गए। उनकी अन्तर्चेतना में मूल्यों का एक द्वन्द्व रहता था जो उन्हें सोच समझ कर निर्णय लेने को बाध्य करता था और इसी में बहुत बहुत देर हो जाती थी। यही उनकी अव्यावहारिकता थी कि वह गोलगोल चक्करदार जीनों में चढ़ना नहीं जानते थे अपितु सीधी सीढी को सूर्यमुखी दिशा में खडी करके सूर्य के नेत्रों में अपनी पैनी अगुलियां (जैसे उनकी लम्बी कविताओं की पैनी पक्तियां) चुभो आने का साहस रखते थे।

यह नहीं कि मुक्तिबोध ने छोटी कविताए लिखी ही नहीं। शुरू शुरू में उन्होंने अपेक्षाकृत छोटी कविताए भी लिखीं लेकिन अज्ञेय की 'हाइकू' शैली की 'थिर हो गयी पत्ती' जैसी लघुलघु-टुकडा-टुकडा कविताए नहीं। किसी किस्म का भी लघुवाद उन्हें स्वीकार नहीं था। उनकी छोटी कविताएं भी बीस पच्चीस पक्तियों से कम की नहीं होती थीं। लेकिन इस छोटेपन से उन्हें सदा असन्तोष रहा और १९६३ में तारसप्तक के अपने 'पुनश्च' में उन्होंने लिखा 'यहा जो नयी कविता (एक आत्मवक्तव्य) दी जा रही है और जो सन् १९६३ की ही रचना है, अपेक्षाकृत छोटी है। इससे और छोटी रचनाएं शायद मैं अब नहीं लिख सकता।' और तारसप्तक में दी गई, उनकी यह (सम्भवत अन्तिम) कविता भी छ पृष्ठों की जगह घेरती है। यह कोई ज़रूरी बात नहीं कि छोटी कविता बुरी ही हो और लम्बी कविता

अच्छी। छोटी कविता की अपनी खूबी है लेकिन मुक्तिबोध के लिए तो उनको छोटी कविता भी कम से कम छः लम्बे पृष्ठ मांगती है। दोष न मुक्तिबोध का है न कविता का, बल्कि आज के युग के यथार्थ के उस क्लैसिक दबाव का है जिसके तत्व परस्पर इतने संश्लिष्ट होते गये हैं, और वह यथार्थ (पूरा का पूरा) अपने में इतना अधिक गतिशील होता जा रहा है कि उसे छोटी कविता के 'लघुपात्रवाद' या पु० भा० भावे के जलपात्रवाद में बंदी नहीं किया जा सकता। जिन लोगों ने भी मुक्तिबोध को तथा उनकी कविता को गमलों, डब्बों या चौखटों में बंद करने का प्रयास किया, वे पछताए ..क्योंकि गमले तो टूट गये, लेकिन उनमें बंदी की गई आत्मा छूट कर निकल भागी......।

और मुक्तिबोध ने कहा भी था कि कविता घर का 'अन्धेरा बन्द कमरा' नहीं है...... ड्राइंग रूम नहीं है (जिसे श्रीकान्त जी 'भविष्य-वर्तमान का लाउंज' कहते हैं......'बुखार में कविता' लिखते हुए) बल्कि एक 'ईमान भरा सरल बेछोर मैदान' है जिसमें यात्रा करने वाले को मैदानी हवाओं का सामना करना पड़ता है न कि वातानुकूल (एयरकण्डीशन) के मखमली झोंकों का।

प्रसंगवश यहां छोटी तथा लम्बी कविता के विवाद में थोड़ी रुचि लेना अप्रासंगिक न होगा। (तीन) छोटी (हिन्दी) कविताओं (पंत : वाह्य बोध, अज्ञेय : सोन मछली, विश्वनाथ त्रिपाठी : परिवार) के गुणात्मक महत्व की प्रतिस्थापना करने वाले जर्मन विद्वान श्री लोठार लुट्से[१] ने भी यह स्वीकार किया है कि एक अच्छी छोटी कविता को अपेक्षा एक अच्छी लम्बी कविता लिखना अधिक कठिन है। उन्होंने अच्छाई (श्रेष्ठता) की कसौटी कविता की स्वतः पूर्णता को माना है न कि आकार की दीर्घता या लघुता को। मुक्तिबोध की कविताएं इस संश्लेष-गुण से समन्वित हैं और उनकी कविताओं में एक भी पंक्ति ऐसी नहीं जिसको निकाल बाहर कर देने पर कविता का प्रभाव यथापूर्व रह जाए। उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया था कि यथार्थ के तत्व परस्पर गुम्फित होते हैं। यह यथार्थ कवि का आभ्यान्तरीकृत यथार्थ होता है अतः कविताओं में शब्दों के इस वस्तु विनियम से मौलिकता के विकृत हो जाने की सम्भावना हो जाती है। धर्मयुग (१ नवम्बर ६४) में मुक्तिबोध की एक कविता 'आरम्भ' को प्रभाकर माचवे जी ने संशोधित रूप में छापा है। अनिलकुमार ने भी एक जगह ऐसा संकेत किया है कि मुक्तिबोध ने उन्हें युद्ध विषयक एक कविता 'भाषा पर कलम फेर देने के लिए' दी थी। श्रीकान्त ने भी अधूरी कविताएं सम्पादित कर देने की बात कही है। लेकिन इन सभी

---

१. लोठार लुट्से : तीन छोटी हिन्दी कविताएं : दे० माध्यम : अक्तूबर ६६, पृ० ३३।

प्रयत्नों में हमें यह ध्यान रखना होगा कि मुक्तिबोध की कविताएं चाहे वह लम्बी हों या अधूरी विशुद्ध तथा यथारूप (उनकी पाण्डुलिपियों के आधार पर) प्रकाशित की जानी चाहिए और उनके प्रस्तुतीकरण में किसी अन्य मित्र या विद्वान के किसी अनिवार हस्तक्षेप का दावा नहीं होना चाहिए। ऐसी स्थिति में ही उनकी कविताओं की सृजनप्रक्रिया को समझने के महत्वपूर्ण संकेत हमें उनकी कविता से ही प्राप्त हो सकते हैं। हम श्री अनिलकुमार की बात को आगे बढाते हुए कह सकते हैं कि उनकी कविताओं को संक्षिप्त या सम्पादित करने के प्रभुत्वाधिकार के अहं में उन प्रारूपों पर 'अपनी कलम फेर देने का प्रयास' एक साहित्यिक अपराध से कम नहीं होगा। जिन लोगों के हाथों में उनका साहित्य सुरक्षित है उन्हें इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि मुक्तिबोध ने जिस रूप में अपनी कविताओं को कागज़ पर अंकित किया था, उसी प्रारूप को (बिना किसी रद्दोबदल के, बिना रंग भरे) प्रकाश में लाया जाना चाहिए। श्रीकान्त जी ने इस सम्बन्ध में सावधानी बरती है, उनके इस संयम तथा साहित्यिक अनुशासन की चेतना का हम स्वागत करते हैं।

हिन्दी में छोटी कविता का सर्वाधिक पक्ष लिया है श्री अज्ञेय ने। उन्होंने छोटी कविताओं को 'भाव संहिति तथा भावसमुच्चय' का अप्रतिम उदाहरण माना है और कहा है कि 'भावना-प्रधान कविता छोटी ही हो सकती है। उनका मत है कि 'जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छायी', वह आंसू बन कर आए यहां तक तो ठीक है किन्तु जब वह बरसात की झड़ी सी बरसने लगती है तब वह शायद वही पीड़ा नहीं रहती, और घनीभूत तो भला रह ही कैसे सकती हैं[२] इसके विपरीत ठोस कविता के आद्याचार्य अपोलिनियर ने अस्तित्व के उद्भ्रान्तों को बरसात की झड़ी के रूप में बरसा देने में ही सृजन की सार्थकता समझी है। तीसरा सप्तक के कवि प्रयाग नारायण त्रिपाठी[३] भी समानान्तर लकीरों के अटट अन्तराल को ही सृजन की शाश्वता के रूप में स्वीकार करते हैं। वास्तव में इन दोनों मतों के सहअस्तित्व का रूपायाम ही मुक्तिबोध की लम्बी कविता है। इन दोनों आयामों के संकेत मुक्तिबोध अपनी 'दिक्काल की थियोरम' की व्याख्या करते हुए 'आकाश की ओर उठती निसनियां और उल्कापात' (उदग्र गति, ऊर्ध्व और पतित) तथा 'लगातार विचारों के सत्र' (समानान्तरगति-अग्र या पश्च) आदि के गणितीय प्रतीकों द्वारा देते हैं। प्रयाग नारायण ने सृजन प्रक्रिया के विश्लेषण में समानान्तर चलती तीन (या शायद चार ?) लकीरों की बात कही है।

---

२ आत्मनेपद अज्ञेय पृ० ३१।

३ दे० तीसरा सप्तक, पृ० ४७।

अन्तर यह है कि मुक्तिबोध की सृजन प्रक्रिया एक असमानान्त 'चक्रिल प्रक्रिया' होती है जिसे उन्होंने अपनी एक कविता में 'चौराहे में बने त्रिकोणवृत्त' के प्रतीक द्वारा स्पष्ट किया है। चार लकीरें या चार दिशाएं चौराहे में आकर एकोन्मुख हो जाती हैं और उनके बीच का वृत्तीय त्रिकोण सृजन प्रवाह को दिशा संकेत देता है। फलस्वरूप सृजन प्रक्रिया त्रिकोण वृत्तीय (त्रिकोण में स्थित वृत्त) गति में बहती है। क्योंकि यह प्रवाह चक्रबद्ध (साइक्लिकल) होता है इसलिए 'अन्तहीन (न कि अनन्त) भी'।४ शायद यही कारण है कि मुक्तिबोध की कविताएं लम्बी होने पर भी अधूरी रह जाती हैं।

अज्ञेय जो लम्बी कविता को दोषपूर्ण कविता तो नहीं कहते लेकिन उसके कलात्मक संगठन के मूल में भाव की संहिति तथा तीव्रता का अभाव मानते हैं। मुक्तिबोध की लम्बी कविताएं गठन की दृष्टि से बेजोड़ हैं। उनमें एक वस्तुनिष्ठ श्लेषात्मकता मिलती है जो उस ढंग की आत्मबद्ध कविताओं में नहीं मिलती। मुक्तिबोध की कविताएं अपने आप में एक सामाजिक सन्दर्भ लिये रहती हैं और अस्वयं होने की प्रक्रिया में गतिमान होती हैं इसलिए उनकी आधार-भूमि एक वस्तुगत यथार्थ की हो जाती है। इसी से उनकी कविताओं में वह आत्मपरक अमूर्तता नहीं आ पाती जो श्रीकान्त, विद्यानिवास, देवताले, सर्वेश्वर आदि की लम्बी कविताओं में अक्सर देखने को मिलती है। दिनमान के एक अनाम लेखक ने 'अमूर्त को मूर्त की पूर्णता' माना है। हम उनकी बात से सहमत हैं परन्तु मुक्तिबोध के विशेष सन्दर्भ में इतना निवेदन और करना चाहते हैं कि फेण्टेसी की तन्मयता के क्षणों में उनकी अमूतन प्रक्रिया भी एक ठोस तथा यथार्थिक आधार इसलिए प्राप्त कर लेती है क्योंकि वह फेण्टेसी यथार्थ की ही दर्पणधर्मा है और उस फेण्टेसी को उसके सामाजिक सन्दर्भों में ही पूरी तरह समझा जा सकता है। मुक्तिबोध की कविताओं में 'आंसू सी, भाफ़ बनकर उड़ जाने' की सूक्ष्मता या महादेवी की सी 'राह पर अपना निशान न छोड़ जाने की 'बदली जैसी भावना' नहीं मिलती। उनकी कविताएँ तो लावा-वर्षण की तरह होती हैं जो शिलाओं पर भी अपने निशान छोड़ जाती हैं। गम्भीर हूं मैं मेघ क़ाला—मुक्तिबोध ने स्वयं भी कहा है। उनकी लम्बी कविताओं में हमें अपने अस्तित्वों के उद्भ्रान्त गिरने की स्पष्ट ध्वनि सुनाई देती है। शमशेर ने भी उनकी कविता को ठोस शिलाकाव्य कहा है। उनकी कविताओं का धरातल प्रेमचन्द जी की तरह 'सपाट समतल मैदान' न होकर पर्वतीय तथा वन्य होता है 'शिलाओं पर शिलाएं'.... झरने कहीं विरले, केवल गहरी बावलियां.....सूखे कुएं, झाड़ झंखाड़, ऊंची नीची अनन्त

४. डा० इन्द्रनाथ मदान।

पगडण्डियाँ—पठार, ऊबड़ खाबड़ धरती और इस धरती के आतंकमय इतिहास के बीच लहूलुहान मानव।[५] अपने इन्हीं मानवीय तथा विचारात्मक सन्दर्भों के कारण उनकी लम्बी कविताएं अमूर्त (एब्स्ट्रेक्ट) न होकर मूर्त तथा ठोस (ठोस कविता के अर्थ में भी) होती हैं जो अपने सत्य की व्याख्या के लिए किसी इतिहास पुरुष की ही अपेक्षा रखती हैं।

लम्बी कविताओं पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि उनमें भावों की गद्यान्वय 'पेराफ्रेज़िंग' होने लगती हैं तथा 'पटरी पटरी' जाने वाली इन कविताओं में पुनरावृत्ति तथा अनियंत्रणात्मकता की अशोभात्मक अभिव्यक्ति का प्राधान्य हो जाता है। श्रीनन्दन जी ने राजेन्द्र प्रसाद सिंह की लम्बी कविता 'शीर्षक से परे' का उदाहरण देते हुए अपनी इस बात को पुष्ट किया है।[७] श्री हुड्से ने भी 'विस्तार से अनावश्यक खींचतान प्रलाप तथा उबाने वाली पुनरावृत्ति' को दोष माना है किन्तु विलक्षणता इस बात में है कि मुक्तिबोध की कविताओं में यह सभी तथाकथित दोष अपनी मात्रात्मक विपुलता के बावजूद भी गुणात्मक विशेषताएं बनकर आ गये हैं। और इन सब का कारण यही है कि उनकी कविताओं में एक वैज्ञानिक सश्लेषगुण पाया जाता है जो कथ्य को कहीं भी बिखरने नहीं देता। इसी गुण को जगदीश गुप्त ने विश्लेषण से सश्लेषण की ओर जाने की सृजनात्मक अनिवार्यता कहा है। मुक्तिबोध भी द्वन्द्वों तथा विरोधाभासों से एक मैत्री की ओर बढ़ते हैं अत उनकी अमूर्तताएं तथा बिखराव एक अन्तरंग आत्मीयता के केन्द्रोन्मुख त्रिकोणायामों में सश्लिष्ट हो जाते हैं। उनकी आवृत्तियां अपनी बात को अधिक अच्छी तरह तथा ज़ोर देकर कह सकने के आभिव्यक्तिक असन्तोष की विवशता होती हैं—'पुनरावृत्तियां हैं लेकिन वे ज्यादा ज़ोर देने के लिए, समझा समझा कर कहने के लिए। मुख्य बात तो उसकी दृष्टि है। उसका मैं पक्षपाती हूँ।' (मुक्तिबोध)

इन पुनरावृत्तियों के कारण लम्बी कविताओं में एक अरोचकता के पैदा होने का भी खतरा होता है। लेकिन मुक्तिबोध की कविताएं अरोचक इस लिए नहीं हो पातीं क्योंकि उनमें एक मिथकीय गाथा चलती है, एक नाटयात्मक प्रवाह व्याप्त रहता है जो पाठक को साथ-साथ लिये चलता है। एक गति होती है बन्दूक से छूटी गोली की सी गति जो पाठक को ऐसी

---

५ शमशेर 'चांद का मुंह टेढ़ा है' (कविता सग्रह) की भूमिका में पृ० २१।

६ किन्तु अतियथार्थवादी 'अनन्त अव्यवस्था की ठोस सतह' वाला मूर्तन नहीं, बल्कि एक क्रमबद्ध व्यवस्था की सफाई (दे० पाश्चात्य आलोचना की अर्वाचीन प्रवृत्तियां—राजकमल पृ० ६७)।

७ नन्दन धर्मयुग ६ सितम्बर, १९६४, पृ० ३४।

उत्तेजना की अनुभूति देती है जैसी 'चलती गाड़ी को पकड़ लिया हो'। पाठक कभी तो इन्हें दम साध कर पढ़ता है जैसे किसी आतंक से गुजर रहा हो और कभी एक सांस में पढ़ जाता है······इनमें एक यात्रा-कथा होती है जिसमें मुक्तिबोध सहचर के रूप में पाठक को भी साथ लिये चलते हैं।

इन कविताओं में शब्दों की एक खरी धार होती है जो पाठक के 'उपराम' को चीर फेंकती है। ये कविताएं 'नागात्मक' होने के कारण पाठक को अपने पाश में बांध लेती हैं और अन्त में उसे अपनी गुंजलक से एकदम, एक शोर एक आवाज़ के साथ—मुक्त कर देती हैं और पाठक मुक्तिबोध के ही साथ मन ही मन चीख उठता है—

'आह! रिहा कर दिया मैं
कई छायामुख करते हैं पीछा'

इन कविताओं में आवृतियों ('कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गई', 'भागता मैं दम छोड़ घूम गया कई मोड़' आदि) द्वारा कविता में नाट्यात्मक-मोड़ देते हुए मुक्तिबोध पाठक को मानो तृतीय-मंच पर घुमाकर किसी दूसरे ग्रह, दूसरे संसार में फेंक देते हैं। यह मोड़ लम्बी कविताओं में आशंकित एकरस विस्तार को प्रदीप्त करके पाठक को 'लहरदार रेती के बीच' 'ओएसिस' का सा सुख देते हैं।

लम्बी कविताओं के अन्त के बारे में मुक्तिबोध को सदा असन्तोष रहा है और इसीलिए कविताएं लम्बी होती ही चली गई हैं। उनके मतानुसार जहां कवि की अनुभूति चुक जाए वहां बात समाप्त कर देनी चाहिए। धर्मवीर भारती[८] इसे यों कहेंगे—'जब कोई जीवन की पूर्णता पर पहुंच जाता है और नहीं मरता तो यह उसका अन्याय है। अगर वह अपनी ज़िन्दगी का लक्ष्य पूरा कर चुका है तो उसे मर जाना चाहिए।' मुक्तिबोध को अपने अन्त की पूर्णता के बारे में कभी कोई खुशफ़हमी नहीं रही। इसलिए उनकी कविताओं के अन्त आकस्मिक आघातक और अधूरे होते हैं। मुक्तिबोध कविता में नाट्य तत्व[९] के प्रवेश को निषिद्ध नहीं

---

८. धर्मवीर भारती : गुनाहों का देवता : पृ० २७३।

९. इस सम्बन्ध में श्री परमानन्द श्रीवास्तव का यह मत देखिए : जिन रचनात्मक शर्तों पर हम आज की कविता को स्वीकार करते हैं वह संगीत या बिम्ब की नहीं, नाटक या उपन्यास की है।

मानते थे (दे० तार० में उनका वक्तव्य) उन्होंने कविताओं में 'दृश्य बदलता है', 'इतने में', 'कि सहसा,' 'अकस्मात्' आदि शब्दों का प्रयोग करके इसी प्रभाव की सृष्टि की है।

नया कवि अपनी कविता को प्रेरणा के क्षण से उद्भूत (इन्टयूटिव) नहीं मानता और इसीलिए उसकी रचना प्रक्रिया पर्याप्त जटिल तथा लम्बी होती जा रही है।१० नयी कविता अनिवार्यत बौद्धिक है अत उसमें अनुभवों की परस्पर अनवरत सम्बद्धता का प्रयास मिलता है जिसे परमानन्द जी ने रचना प्रक्रिया का दूसरा स्तर कहा है। सृजन प्रक्रिया में 'क्षण का महत्व' आज लेखक से स्थानान्तरित होकर पाठक की आस्वाद प्रक्रिया से अधिक सम्बद्ध हो गया है। नयी कविता के लिए सृजन के क्षण उतने महत्वपूर्ण नहीं रहे जितने आस्वाद के क्षण। क्षणों का मनोविज्ञान आज की कविता के लिए उपयुक्त भी नहीं रहा क्योंकि उसके 'बाजू फैल रहे हैं' और नये कवि भी आलिंगन की जगह उन्मुक्तीकरण को अधिक महत्व देने लगे हैं। क्षण की सत्ता आज भावना के क्षेत्र तक सीमित रह गई हैं। बौद्धिकता अनिवार्य रूप से जटिल होती है। अत: यह क्षणों की सहजता से टंकित नहीं की जा सकती। आधुनिक वैज्ञानिक बुद्धि स्वभावत: हमें 'विराट' की ओर अग्रसर करती है। मुक्तिबोध की कविताए भी इसी बौद्धिकता को लिये हुए हैं। यह उनका स्वभाव ही है। मुक्तिबोध बुद्धि द्वारा हृदय को संशोधित करते आए हैं। उनकी इस बौद्धिकता पर कोई प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि—मुक्तिबोध का उत्तर है—'अब हिमालय पर बर्फ क्यों जमती है? वहां की जलवायु ही है वह हिमालय की प्रकृति है (वीणा मुक्तिबोध विशेषांक, पृ० ४४)।

उनकी कविताओं की इस अतिबौद्धिक बौद्धिकता के कारण उन पर दुरूहता का आरोप भी यदा कदा लगाया जाता है। उनकी कविताओं को जटिल कहना तो ठीक है लेकिन दुरूह या दुर्बोध कहना अपने अज्ञान को सूचित करना है, क्योंकि मुक्तिबोध के शब्दों में—

'सरल थे सत्य थे मन के
कि अन्वेषकों की जोहते थे बाट '

नई कविता पाठक से भी किंचित् दीक्षा की अपेक्षा रखती है और मुक्तिबोध इसके अपवाद नहीं हैं। भले ही उन पर यह आरोप लगाया जाए कि उन में प्रेषणीयता का अभाव है लेकिन हमें इस बात की कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिए क्योंकि यह आरोप उन पाठकों की ओर से ही

---

१० दे० हिन्दी नवलेखन रामस्वरूप चतुर्वेदी।

आता है जिनके लिए पंत, प्रसाद, निराला के बाद जैसे कुछ लिखा ही नहीं गया। दरअसल यह पाठक में गतिरोध है जिसमें मुक्तिबोध, अज्ञेय, शमशेर आदि को समझने का थोड़ा भी धैर्य नहीं है।

दिनकर के शब्दों में 'हिन्दी की नई कविता आगे ऐसी लिखी जाएगी जिसका रस केवल वे ही लोग ले सकेंगे जिनका बौद्धिक संस्कार अतिप्रखर है। मनुष्य की काव्यात्मक चेतना का असली प्रसार इन्हीं दुरूह कविताओं के भीतर से होगा और यही कविताएं पूर्ण ऐतिहासिक स्थायित्व की अधिकारिणी होंगी।'

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने एक जगह मुक्तिबोध पर बौद्धिकता के जंगल में खो जाने तथा समस्याओं से टकरा कर बिखर जाने का आरोप लगाया है। मुक्तिबोध का स्पष्टीकरण प्रस्तुत है (आचार्य जी के प्रति पूर्ण आदर भाव सुरक्षित रखते हुए)...'उस वर्ग के आलोचक तुम जैसों को कहते हैं कि तुम आब्स्क्योर' हो। जो लिखते हो उसका ठीक ठीक अर्थ समझ में नहीं आता। असल में तुम्हारे 'डिजिट्स' (गणित) ही अलग हैं, तुम्हारा वातावरण ही अलग है, तुम्हारी प्रेरणा ही भिन्न है। वह भला उनके अनुकूल क्यों होगी ? वह उन्हें समझ में कैसे आ सकती है ? क्यों वह उन्हें सुन्दर लगेगी।[११]

मुक्तिबोध को अपनी दुरूहता का स्वयं बोध है। इसकी उन्होंने आत्मस्वीकृति भी की है और यह अहसास ही अपने आप में एक गुण बन जाता है।[१२] मुक्तिबोध भले ही अपनी कमज़ोरियों को पूरे प्यार के साथ स्वीकार करते हों लेकिन हमें यह सोचना होगा कि यह कमज़ोरी पाठकों, आलोचकों की है या लेखक की।

यह तो स्पष्ट ही है कि लम्बी कविता का 'परिप्रेक्ष्य' अनिवार्यतः विराट होता है। मुक्तिबोध अपने 'केनवास' को स्थिति तथा गति दोनों आयामों में विस्तृत करके उसमें अपनी अनुभूतियों के रंग भरते हैं। यह विराटता ऐतिहासिक तथा सामाजिक सन्दर्भों से जुड़ी होती है। कई साधारण घटनाओं या दृश्यों को एक साथ रख कर एक विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। ये दृश्यावलियां मिलकर एक ऐसा व्यापक परिप्रेक्ष्य तैयार कर लेती हैं जो इनको एकसूत्रता प्रदान करता है—लगता है कवि (मनु की तरह) एक

---

११. एक साहित्यिक की डायरी, पृ० ९८।

१२. दे० जनयुग २२ मई १९६६, पृ० २२।

ऊंचाई पर स्थित है (कैलास शिखर पर बैठेंगे—मुक्तिबोध) जहां से बहुत दूर तक वह एक ही समय देख सकता है—कवि अपनी ओर से कोई कटी छटी रचना प्रस्तुत नहीं करता। पाठक के मन में आडी तिरछी रेखाएं खिंचती जाती हैं और उन्हीं में से एक स्पष्ट किन्तु अनुपेक्षणीय चित्र उभरता है। इन कविताओं में अस्पष्टता का आरोप करने वाले, युग जीवन की जटिलता तथा सामाजिक अव्यवस्था को भूल जाते हैं—"कविता मात्र स्थिति की अभिव्यक्ति है न कि रामशलाका प्रश्नोत्तरी।"१३

---

१३ विश्वनाथ त्रिपाठी माध्यम अक्तूबर ६५ पृ० ५१।

सौन्दर्यमूल्यों पर एक निर्बन्ध बातचीत

रमेश कुंतल मेघ

जब मनुष्य समाज में अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करता है तथा वातावरण को अपने इन्द्रियबोधों के द्वारा (शब्द, रस, रूप, गंध के माध्यम से) मदाकुल करता है, तो उसके इस प्रयास में एक विशिष्टता होती है, मौलिकता और ऐन्द्रिकता की। इनसे ग्रहीत इच्छाओं, रुचियों या लक्ष्यों को हम सौन्दर्यबोधात्मक मूल्यों की संज्ञा देते हैं। यदि तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र के प्रकृत् या साध्य-मूल्यों की स्थापना करें तो वे क्रमशः सत्य, शिव और सौन्दर्य के मूल्य होंगे। अतः सौन्दर्य-शास्त्र का प्रकृत् मूल्य "सौन्दर्य" है। सौन्दर्यशास्त्र के सृजन और आंशसा तथा कला से संबंधित प्रकृति के गुणों से निकट संबंधित है।[१] यह कला का दर्शन है। कला क्या है, अथवा मानवीय क्रियात्मकता की सम्पूर्ण परिधि में कला का स्थान क्या है—इन दो प्रश्नों का निर्धारण इसका उद्देश्य है।[२] यह मानवीय क्रिया या अभिव्यंजना है, जो जानबूझ कर किसी लक्ष्य को ओर उन्मुख है।[३] अतः यह कला के दर्शन और सौन्दर्य की प्रकृति के विषय में विवेचन करने वाला शास्त्र है। निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि (१) सौन्दर्य 'विशुद्ध सौन्दर्य' के रूप में उपलब्ध नहीं हो सकता क्योंकि व्यक्ति, पर समाज, वातावरण और अनुभव का प्रभाव उसे अनेक तरलताओं, भंगिमाओं और भासात्मक छायाओं से अवगुंठित कर देता है। आदर्शवादी सौन्दर्य शास्त्र केवल कला के सौन्दर्य-सम्बन्ध की ही विवेचना करके भूल करता है।(२) सौन्दयशास्त्र के प्रमुख मूल्य कला और सौन्दर्य हैं। यहां प्रसंगों और आवश्यकताओं के अनुसार ही उसकी विवेचना होगी। हमारा मूल उद्देश्य सौन्दर्य और आंशिक कला मूल्यों की प्रतिष्ठापना होगी।

'सौन्दर्यात्मक अथवा कलात्मक मूल्य' एवं 'कला' समानवाचक नहीं हैं। सौन्दर्यात्मक मूल्यों की अभिव्यक्ति कला द्वारा होती है अतः कला की प्रतिष्ठा कलाकार में होती है, दूसरी ओर कला की भावना करोड़ों की संख्या वाले जनसमूहों में भी होती है, जो कला के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण को प्रतिपादित करते हैं। अतः कलाकृतियों, साहित्यिक ग्रन्थों में, सौन्दर्यशास्त्र के सिद्धान्तों आदि में इन्हीं समष्टिगत् सौन्दर्य मूल्यों को परिष्कृत व अभिनव अभिव्यक्ति मिलती है, जो इन व्यापक जन-सुषमाओं के प्रतीक हो जाते हैं। अतः कला यथार्थ

---

१. रेडालवुश्लर, 'फिलासफी : एन इंट्रोडक्शन', पृष्ठ २४६।

२. पीटर ग्रीन, 'प्रोब्लेम आफ आर्ट'।

३. क्रोचे, वेरों व तौल्सतोय के विचारों का निष्कर्ष।

से, सामाजिक जीवन से सौन्दर्य से आत्मीय मैत्री करती है, मैत्री ही नहीं उनके सौन्दर्य-भाव की मंगलमूर्ति हो जाती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर सौन्दर्य की मूर्ति को ही मंगल की पूर्ण मूर्ति मानते थे। कला स्वयं ही अपना साध्य नहीं है, ऐसी प्रवृत्ति तभी पनपती है, जब कलाकार सामाजिक वातावरण से विमुख हो जाता है। कला एक सामाजिक-प्रक्रिया है। कला—कलाकृति और सुंदर की त्रिवेणी के कगार पर सौन्दर्यशास्त्र अथवा शोभा की रुचियां सहस्रों की संख्यावाली जनता में अंकुरित और पल्लवित होती हैं जिनके मौलिक और लावण्य भरे अंश कलाकृतियों में प्रतिनिधित्व पा जाते हैं और वे सामाजिक जीवन तथा यथार्थ से अपने संबन्धों को अधिक सप्राण और सशक्त कर लेते हैं। क्लासिकल सौन्दर्य शास्त्र ने शुद्ध सौन्दर्य की खोज के प्रयास के पश्चात् दूसरी भूल यह की है कि इसने असंख्य जनता में पनपते हुए सौन्दर्य मूल्यों पर तो ध्यान नहीं दिया अपितु कलाकृतियों और सौंदर्य पर ही चिंतनशील रहा। इस सौन्दर्यशास्त्र की एक महत्ता भी प्रशंसनीय रही है कि इसने सभी कलाओं—नृत्य, संगीत, शिल्प, काव्य आदि में नैतिक उद्देश्यों की स्थापना की है चाहे वे प्लेटो के मत हों अथवा भरतमुनि के रसवादी प्रयोजन (यद्यपि इन नैतिक उद्देश्यों का उपयोग केवल मात्र सवर्णों के लिए था)।

कहा गया है कि जिस प्रकार वाणी में प्रतीयमानता या 'ध्वनि' होती है, उसी प्रकार नारी के अंगों का लावण्य या आकर्षक सौन्दर्य अथवा 'रमणीयता' ही सौन्दर्य है। पंडितराज जगन्नाथ ने प्रतिपादित किया था कि सौन्दर्य (रमणीयता) का सुख विचित्र तथा भिन्न प्रकार का होता है—इसमें भावनात्मक संवेग और स्पंदन रहता है। इसका उल्लास दूसरे प्रकार का होता है अतः इसमें संवेगात्मक प्रवृत्तियां होती हैं। पंडितराज ने आगे यह भी माना कि—रमणीयता का मूल्य केवल मात्र उपयोगितावादियों का सुख नहीं है अपितु यह व्यक्तिगत भावनाओं और हर्षातिरेकों से परे अलौकिक है। रस और रमणीयता की अनुभूति का मौलिक अंतर स्पष्ट करके पंडितराज ने एक मौलिक क्रांति उपस्थित की थी।—'रमणीयता च लोकोत्तराह्लादज्ञानगोचरता—'। क्षण क्षण नवीन रूप धारण करती हुई इस रमणीयता के रूप को शताब्दियों से अनेक कवि, महाकवि, कलाकार, सामान्य नर-नारी अनुभव करते चले आए हैं लेकिन अनुभूति के आवेश में वे मन्त्रमुग्ध होकर उसे अमर तरल छाया-सी, मंगलमूर्ति कहकर ही आमन्त्रित करते रहे हैं। कीट्स के अनुसार यह कभी भी शून्य में विलीन नहीं होती क्योंकि इसका माधुर्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। सुंदरता शताब्दियों से कला के अनुरंजन पूर्ण दर्पण में मृग-तृष्णा रही है। यदि रंग, स्वर, शब्द अथवा पाषाणों के माध्यम से कलाकारों के लिए वह अनुसंधान योग्य है, तो कलाकृतियों को

प्रस्तुत कर सकने में अक्षम मनुष्य सौन्दर्य के स्वप्न देख सकते हैं, वे इन सौन्दर्य-कृतियों का अनुकरण करके अनेक कला-पुनर्जागरणों के चक्र संचालित करते हैं अथवा मादक तल्लीनता में प्रकृति की नैसर्गिक मोहकता निरखते निरखते अतृप्त बने रह सकते हैं – 'सकल अवध हम रूप निहारल, नयन न तिरपित भेल'। अस्तु कलाकार तो प्रेषणीय सौन्दर्य को कलाकृतियों में गढ़ देते हैं किन्तु कला प्रेमी, असंख्य जनता, जो इन सौन्दर्य मूल्यों की निर्धारक व प्रेरक शक्ति है, उनको स्वप्नों से, अनुकरण से, दर्शन से गतिशाली करती है और कला तथा जनता दोनों ही सौन्दर्य-बोधों में सहगामी पथिक हो जाते हैं। कीट्स का कहना है : सौन्दर्य ही सत्य है, और सत्य ही सौन्दर्य है, यही सब कुछ है। तुम्हें जो कुछ भी जानने की आवश्यकता है या जिसे तुमको इस धरती में जानना चाहिए, वह यही सब कुछ है।४ एक ग्रीक-कलश में अंकित अनेक प्रेमी-युगलों और बलि-पशुओं के चित्रों को देखकर कूज उठने वाली कीट्स की इस वाणी का तात्पर्य यह हो सकता है कि वही वस्तु सुन्दर है, जो सत्य की अभिव्यक्ति करे या हमें सत्य का प्रत्यक्ष कराये, या सौन्दर्य के अवगुंठन में आकर हम सत्य को अपनी धारणाओं के अनुकूल देखते हैं। इसी प्रकार यथार्थवादी सौन्दर्य शास्त्रियों ने सौन्दर्य को ही जीवन माना है। "विज्ञान की तरह कला भी मनुष्यों की रुचियों के सभी विषय स्वीकार करती है। विज्ञान तर्कात्मक धारणाओं, विवेचनाओं की भाषा के सहारे तथा कला कलात्मक बिम्बों के सहारे व्यक्त होती है—यही इन दोनों का अन्तर है।५

सौन्दर्य में नारीत्व-भावना का रंजन भी एक विवेचनीय प्रश्न है जिसका समाधान मूलतः मनोविज्ञान में निहित है। हम अपनी यौन-भावना का उदात्तीकरण करते हैं और प्रत्येक वस्तु हमें कोमल अर्धांग तथा सुकुमारता से पूर्ण लगती है। आदिम युग की संघर्षशीलता में परिवारों के बनने के पश्चात ही इस नारी-भावना (फेमेनीटी) का अभ्युदय हुआ होगा। अतः एक ओर तो यह यौन-भावना नारी के प्रति आकर्षण, तन्मयता और मादकता में व्यक्त हुई—जैसा कि रवीन्द्र नाथ ने नारी (के सौन्दर्य) को कहा है कि वह अर्धेक सत्य और अर्धेक स्वप्न है—तो दूसरी ओर अलंकरण को भावना में, विश्व की साहित्यिक कृतियों में शृंगार का मूल उत्स रति सिद्ध होती है उसका प्रतीक 'काम' है। अतः इसी रति-काम के संजोयजन तथा चिंतन के फलस्वरूप प्रेम काव्यों का प्रणयन हुआ! इस्लाम में सूफ़ी और सूफ़ियों के काव्य तथा भारत में जयदेव, विद्यापति, देव आदि के काव्य स्थूल रूप से उदाहरण माने जा सकते हैं।

---

४. कीट्स, 'ओड टु ग्रेसियन अर्न' चतुर्थ छंद।

५. चर्नीशेवस्की, ऐस्थिटिक रिलेशन आफ आर्ट टु रियलिटी।

इस यौन भावना का आदिम—नारीत्व बोध हमें विश्व की प्रत्येक सुन्दर, तरल, लघु और कोमल वस्तु में प्राप्त होता है। हम सुन्दर पर्वत नहीं कहते बल्कि उत्तुंग और विशाल पर्वत ही सुन्दर हैं, कुंज सुन्दर हो सकता है पर वन तो सघन हो उचित होगा। वैदिक ऋषियों को उषा एक युवती के रूप में दिखती है, दीप शिखा, चन्द्रिका, लताए, आदि स्त्रीत्व से पूर्ण मानी गई हैं। नारीत्व-भावना में सौन्दर्य की मूल सगति के पश्चात सौन्दर्य में एक ओर चिंतन और रहस्य भाव का समावेश हो जाता है, जो आध्यात्मिक सौन्दर्य, आदर्श कवि रूपों (गोपियों, कृष्ण, कामदेव, वीनस, तिलोत्तमा आदि) में व्यक्त होता है, तो दूसरी ओर निरकुशता के नियमन के लिए नैतिकता और पवित्रता की भावना से भी सकुल कर दिया जाता है। वस्तुत ये सौन्दर्य मूल्य नहीं है। परतु इसी नैतिक भावना के आधार पर सतीत्व से शोभित नारियों, कृष्ण के प्रेम में बावरी गोपियों, सीता के वियोग में राम के साथ रोते हुए भवभूति के पर्वतों और तुलसीदास के खगों, मृगों, मधुकरों, तथा साकेत की वियोगिनी उर्मिला में नैतिक सौन्दर्य की प्रतिकृति ग्रहण किया गया है, जो मूलत आरोपण तथा नैतिक अंश का ही सर्वस्वीकृत रूप है। राधा उमा के सौन्दर्य कई कारणों से प्रतीक हो गए हैं। प्रथम तो उसके पीछे सस्कृति की पुरानी परम्परायें तथा पुराण नैतिकता के मादक प्रसग जुड़े हैं, द्वितीय, उनकी मूर्तियों व अगो में पीन पयोधर, भारी नितम्ब, खुले हुए अर्धांग, नारी के स्वतन्त्र नैतिक परिष्कार और मातृत्व भाव की व्यजना करते हैं, तृतीय, ये सौन्दय के पूर्ण रूप, आदर्श, कोमलता द्वारा यौन का स्वस्थ परिष्कार करते है, चतुर्थ, उनके दपति भावों ने पारिवारिक मृदुता, भक्तिधारा, सांस्कृतिक मजुलता को भी भावालोक और कल्पना के क्षेत्रों पर पहुचाया। यह चिरतन नारीत्व प्रकृति तथा शक्ति का प्रतीक भी बना। इसीलिए जब हम टीशन, रूबेस, डीगास् आदि पाश्चात्य कलाकारों की रतिमत्ता नारियों की तुलना खजुराहो और भुवनेश्वर के युगलों से करते हैं तो हमें रति के स्वस्थ आभ्यांतरों का अन्तर स्पष्ट होता है। भारतीय काव्यों में वर्णित राधा पार्वती, या मालवा की सद्य जोती हुई सोंधी धरती पर मेघदूत देखती हुई चचलनयना रमणियां, अथवा सूर की गोपियों की लम्बी बाहुलताए, उनके वक्षस्थलों में पड़े हुए असख्य गजरे, कटियों में पड़ी हुई किंकिणियां रति सौन्दर्य की अतिशयता और सूक्ष्म मादकता का सकेत कराती हैं, दूसरी ओर ये रूप शिल्पों में अधिक भावनात्मक और भगिमाओं से पूर्ण हो गए हैं।—अत इनमें नृत्य को भगिमाओं एव मुद्राओं का भी समावेश हुआ है। यूरोप के कलाकारों में टिशान, रूबेस, मैंने, रेनोए सभी में नारियों के रति-प्रमत्त निर्द्वन्द्व विलास, अथवा देव युवतियों के हिमानी सौन्दर्य के आमोद दर्शन होते हैं, जो सौन्दर्य के दूसरे पक्ष को स्पष्ट करते हैं—सतुलन और दीप्ति। इसके विपरीत भारतीय सौन्दर्य में कान्ति,

शील और आध्यात्मिकता तथा प्रशमन प्रकट होता है। "पूर्वीय कला सामाजिक गुणों के दाम्पत्य-आत्मभक्ति, मातृत्व-कोमलता, दान, अनुराग और क्षमा जैसे प्रतीकों से आपूर्ण है जो बहुधा जातकों, महाकाव्यों और अन्य गाथाओं में वर्णित है"।६ इन्हीं कारणों से मध्यकालीन काव्य और रहस्य भावना देवी और मानवीय प्राणियों के मधुर मिलनों का व्यापक लोक बन गई। अस्तु, सौन्दर्य के प्रकाशन में नारी और नारीत्व-भावना की ही प्रमुखता है।

भारतीय सौन्दर्य में एक विशेषता मनुष्य और प्रकृति की शाश्वत एकता का निदर्शन भी रहा है। प्रकृति के सौन्दर्य और आकर्षण की व्यंजना और अनुरूपता लक्ष्मी की कल्पना में पूर्ण हुई है। सांख्यदर्शन में मूल प्रकृति को क्रियात्मकता की अग्रेत्वरी माना गया है। नारियों में सौन्दर्य की मादक, आत्मिक, और प्रशांत नियताप्ति करके भारतीय सौन्दर्य-वृत्तियों ने प्रकृति की ओर मुख चन्द्र आलोकित किया। भरहुत की वेदिकाओं में मनुष्यों के साथ साथ लताएं, पशु, मृग, भी बुद्ध की उपासना में श्रद्धानत हैं; अजंता की सुंदर स्वस्थ नारियों के दल लताओं और हंसों की बेलों में गजरों-से गुथे हैं; राजपूत, पहाड़ी तूलिका—चित्रों में नायिका के सौन्दर्य, परिधान, भाव, प्रकृति के उद्दीपन से ही संचालित होते हैं। भारतीय काव्य या दर्शन के नृत्य प्रकृति के ही सर्वोच्च शोभा और आनन्द-क्षेत्रों में व्यंजित होते हैं, चाहे वे धीर समीर से कंपित यमुना-तीर हों, अथवा हिमाच्छादित कैलाश। प्रकृति के साथ मनुष्य के तादात्म्य से किसी संस्कृति के सामूहिक जीवन-दर्शन तथा उनके योगों के सौन्दर्य-मूल्यों की अभिजात लक्षणा ज्ञात होती है। देवताओं की केलिचतुरा अप्सराओं, गन्धर्वों की युवती पत्नियों, मनुष्यों की अबोध, भोली चंचल नारियों में प्रकृति की शुद्धता, स्वतन्त्रता और उल्लास का ही ग्रहण हुआ है। निष्कर्ष स्वरूप हम कला-ऋषि डा० आनंदा के० कुमारास्वामी के कथनों को दुहरा सकते हैं—"किसी भी विशेष अथवा एकांतिक अर्थों में सौन्दर्य केवल कलाकृतियों की ही संपत्ति नहीं है, अपितु साधारणतः वह एक गुण अथवा मूल्य है, जो सभी वस्तुओं में उनकी चेतना और चरमोत्कृष्टता के अनुपात में दृष्टिसाध्य हो सकता है। सौन्दर्य आध्यात्मिक अथवा भौतिक वस्तुओं में स्वीकार किया जा सकता है; और, यदि दूसरे प्रकार की वस्तुओं में है, तो यह या तो नैसर्गिक वस्तुओं में या फिर कला कृतियों में होगा। इसकी दशाएं सर्वदा समान रहती हैं।७ सौन्दर्य का यही नारीत्वमय अथवा प्रकृतिमय पक्ष आधुनिक

६. राधा कमल मुकर्जी, द सोशल फंक्शन आफ आर्ट, पृ० ६ परिशिष्ट।

७. आनन्दा के० कुमारास्वामी, "द मेडीएवल थ्योरी आफ ब्यूटी", पृष्ठ ६३।

काव्य में भारतेन्दु युग में तो केवल मात्र आरोपण प्रधान ही रहा, द्विवेदीयुग में वैष्णव नैतिकता की भावना प्रमुख हुई, छायावाद युग में रहस्योन्मुखता, ध्यान तथा प्रकृति और नारीत्व के सौन्दर्य कोमलता तथा अलंकरण का आत्मैक्य रहा किन्तु प्रगतिशील काव्य के युग के आने पर सौन्दर्य के स्थूल बौद्धिक और उपयोगितावादी दृष्टिकोण प्रचलित रहे जब तक कि क्रांतिकारी स्वच्छ दतावाद की धारा प्रवाहित नहीं हुई। क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद में भविष्यवादी आशा विश्वास की भावना ने पुन सौन्दर्य के मंगल, मधुर और सार्वजनीन स्वप्न देखे सौन्दर्य की अलौकिकता, रहस्यात्मकता का परित्याग कर दिया गया।

इन व्याख्याओं के पश्चात सौन्दर्य के तत्वों तथा प्रयोजनो की व्याख्या शेष रह जानी है।

'अलौकिक' आनन्द प्रदान करने वाली वस्तु सुन्दर मानी जाती है। सौन्दर्य में भावनात्मक आवेश और सवेग इतना प्रबल होता है कि स्नाए स्तब्ध हो जाते हैं। अनुभूति के आवेश में ध्यान, तल्लीनता, तादात्म्य की स्थिति के उपरांत जगन्नाथ ने चमत्कार को भी सौन्दर्य भावना का फल माना है। इसीलिए भारतीय कलाकार असीमित और अनन्त सत्यों की अभिव्यजना करने में मनोमुग्ध रहे, उसे धार्मिकता और आध्यात्मिकता से मडित करने में स्वाभाविकता और नैसर्गिकता के नियमों का भी अतिक्रमण करते रहे, जब तक कि किसी विदेशी प्रभाव के सम्पर्क ने उन्हें सचेत नहीं किया—मोहनजोदड़ो की कला, गांधार शिल्प, मुगल-कला और साहित्य, आंग्ल वाङ्मय के प्रभाव से सर्जित कला और साहित्य, इन्हीं विदेशी प्रभावों के फलस्वरूप धर्म-निरपेक्ष, सामाजिक या याथार्थ हो पाए हैं।

सौन्दर्य बोध को विभिन्न अवस्थाए है—(१) बाह्य वस्तुए, (२) ऐंद्रियिक और मानसिक छायाए (३) किसी विशेष आकृति में उनका सम्मिलन (४) अन्तर्मन और अचेतावस्था में उनका तिरोभाव (५) सौन्दर्यात्मक कृतियो का निर्माण। जब सृजन के अन्तर्बाह्य में एकता स्थिर हो जाती है तब सौन्दर्य अपने ध्यानयोग में पूर्ण होता है। आकर्षण, अनुभूति सुख प्रकाशन की आवश्यकताओं के सम्मिलित योग से अनुभूत सौन्दर्य अभिव्यक्त सौन्दर्य हो जाता है।

क्रोचे ने भी सौन्दर्यानुभूति और अभिव्यजना की सामान्य चार दशाए मानी हैं—कला को जब बहिर्जगत उद्वेलित करता है तब प्रभाव (इम्प्रेशन) की दशा होती है, बहिर्जगत के भाव सृजनात्मक अवस्था में अथवा सौन्दर्य के आत्मिक समन्वय की दशा में अभिव्यक्ति (एक्सप्रेशन) पाने को आतुर रहते हैं, सुखवादी उपलब्धि (हेडोनिस्टिक एकप्लिशमेंट) अभिव्यक्ति के पश्चात् होती है यहीं पंडितराज ने 'रमणीयता' की स्थिति मानी है। जिस प्रकार प्रसव के पश्चात् मां को नूतन शिशु देखकर सुख होता है वैसे ही कलाकार को अपने

स्थूल माध्यम के सौन्दर्यकृति हो जाने में सुख होता है। अंतिम दशा अंगों पर सौन्दर्यात्मक तथ्य के प्रभावों से है—इसे अनुभाव कह सकते हैं। भय, लोभ, जुगुप्सा इत्यादि संचारी भावों का लय यहीं होता है। पंडितराज ने इसी अंतिम अवस्था को 'चमत्कार' कहा है। क्रोचे के अनुसार सौन्दर्य स्फूर्ति और छंदस् (रिद्म) का ही नाम है। उन्होंने सौन्दर्य के श्रेणी विभाजन नहीं किए, केवल उसे सफल अभिव्यंजना कह कर ही छोड़ दिया है। किन्तु जब प्रभाव गहरे हो जाते हैं, वासनाओं की तीव्रता चरम हो जाती है, अनुभूति चारों ओर परिव्याप्त हो जाती है तब प्रतिक्रिया का स्फोट होता है और भावों के प्रबलज्वारों के साथ मथित कला-कृति का निर्माण होता है। भवभूति के अनेक वर्णन, निराला की 'राम की शक्तिपूजा', स्वच्छन्दतावादी कवियों की अन्य रचनाएं तथा शैली का 'ओड टु वेस्ट विन्ड' इसके प्रतिनिधि उदाहरण हैं—भावेश की तन्मयता में अन्तर्बाह्य के लय में, पश्चिमी प्रभंजना के साथ, शैली गा उठते हैं—

बन के समान ही तुम मुझे अपनी वीणा बनालो
इससे क्या हुआ कि बन-पत्रों की तरह मेरे जीवन-पत्र झर रहे हैं।
तुम्हारे महान सप्तकों का प्रचण्ड घोष-गर्जन
इन दोनों से ही एक गहरे पतझार के दुखी स्वर को ग्रहण करेगा
जो शोकाकुलता में भी मधुर होगा। तुम मेरी आत्मा बन जाओ,
ओ, रुद्र क्षुब्ध आत्मा! तुम 'मैं' ही बन जाओ, ओ निर्द्वन्द्व!
मेरे अजन्मे विचारों को सारे ब्रह्माण्ड में छितरा दो—
इन पतझर के पर्णों के समान, जिनसे नूतन जन्म शीघ्र हो जाए,
और, मेरी इस कविता की इन्द्रजालिक शक्तियों के द्वारा—
एक बुझे हुए चूल्हे की चिनगारियों और राखों की तरह—
मानवता में मेरे शब्दों को बिखरा दो!
इस अनजागी वसुंधरा की भविष्यवाणी की शहनाई हो जाओ—
मेरे अधरों के द्वारा। हे प्रभंजन, यदि शिशिर आ गया है
तो क्या सरस बसंत अब अधिक दूर हो सकता है ?[८]

अतः किसी प्रमेय (आब्जेक्ट) के ध्यान (कंटेम्पलेशन) में ही सौन्दर्य-भावना की स्थिति है।

ध्यान के पश्चात् सौन्दर्य का दूसरा तत्व कल्पना को उद्वेलित करने की क्षमता है।

---

८. शैली, 'ओड टु वेस्ट—विंड', पंचम छंद।

प्रशांति में स्मरण किए गए विचारों में, अथवा कल्पना के सुखविलास में ही सौन्दर्य का उदात्त रूप निश्चित है। एक प्रकृति-वेत्ता शरद् में धवल कासों का रजत राका में झूमना देखकर कालिदास के ऋतुसंहार के शरद् वर्णन की कल्पना कर सकता है, अथवा वह उसकी वैज्ञानिक समीक्षा के लिए उसके परागकोश को चीर भी सकता है। अस्तु कल्पना में सौन्दर्य के मूर्त बिंब को इंद्रिय बोध की अनुभूतियों में रमाया जाता हैं वस्तु जगत से, प्रत्यक्ष से उसका नाता टूट सकता है, सत्य भी विछिन्न हो सकता है कि स्मृति पर पड़े हुए बिम्ब या तो भावों की तीव्रानुभूति में सादृश्य के अलंकार बनेंगे (जैसे चांदी की पायलों-जैसे कांस-मौर) अथवा एक नूतन 'कवि-समय' बन जायेंगे (यहां हर-सिंगार के उत की चर्चा की जा सकती है कि कवि-सत्य के अनुसार उसके प्रसून केवल निर्मल राका में ही चूते हैं)।

कल्पना के तत्व के पश्चात् सौन्दर्य में विमर्ष (सजेशन) की भी क्षमता रहती है। भाषा के प्रत्येक शब्द, शिल्पी के अनगढे पाषाण, चित्रकार के रंग, इसी विमर्ष के उदाहरण हैं। ये स्वतः ही अपने में एक मौलिक संसार को बसाए रहते हैं—। सन्ध्याकालीन अस्ताचलगामी सूर्य, कुहरे के आंचल में अवगुंठित उपत्यका, शरद् के गोरे—आकाश, काली घनघोर घटाओं में उड़ती हुई श्वेत हंस माला, घाटों पर बहाए गए आकाश-दीप, नन्हे घरों से बच्चों के रुदन, इत्यादि स्वयं ही अपने में एक निमर्ष और चित्र की फिल्म-जैसी क्षमता रखते हैं। लेकिन ये प्रतिबिंब अपनी सांस्कृतिक, भौगोलिक और व्यक्तिगत् रुचियों के आधार पर भी चरमोत्कर्ष को प्राप्त करते हैं। चीनी तथा जापानी कवियों और कलाकारों के ये लघु छाया-बिंब स्वयं एक पूर्ण विषय हैं, लेकिन अन्य देशीय कवियों और चित्रकारों में इनका प्रकाशन नैसर्गिकता, उद्दीपन, आध्यात्मिकता या उपदेशात्मकता की पृष्ठ भूमि पर भी हो सकता है।

ध्यान, कल्पना, विमर्ष के पश्चात् समलयता या सामंजस्य (हारमोनी) सौन्दर्य का प्रधान तत्व है। सामंजस्य के अन्तर्गत अनुपात की सौष्ठवता तथा प्रभावों में कांति, तरलता और भव्यता आनी चाहिए। भारतीय कलाओं में अंगों के विभिन्न अनुपात या उनके सादृश्य (कमल नयन, लता भुजाएं, शुंड-जंघा, धनुष-भृकुटि, पाटल अधर) निश्चित करके सांस्कृति प्रतिरूप और कला के आदर्शों को पूर्ण किया गया है। इन्हीं अनुपातों और भावनात्मक दृष्टिकोणों के आधार पर सौन्दर्य के प्रतिनिधि कृतित्व होते हैं—जैसे यूरोपीय कला में वीनस सौन्दर्य की तथा शिशु के साथ मैडोन्ना भावनात्मक छवि की कृति है। भारतीय कला में उर्वशी सौन्दर्य की, तथा उमा-शिव, राधा-कृष्ण आदि भावनात्मक छविकृतियां हैं। इस तत्व के अन्तर्गत व्यक्तिगत रुचियों का परिष्कार समाजगत और सामूहिक विशिष्टताओं में होता है, हम युग के अनुसार नूतन और मौलिक सौन्दर्य मान स्थापित करते हैं। कला यहीं पहुंच कर

मूलतः धार्मिकता, नैतिकता अथवा मतों से संबंध स्थापित करती है। यहां प्रज्ञात्मक बोध की भी उपस्थिति हो जाती है। और हम सौन्दर्य का विकास 'सौन्दर्यात्मक संस्कृति' की सीमा तक कर देते हैं। सौन्दर्य की आमूल स्थिति इसी तत्व में आकर पूर्णता प्राप्त करती है।

सौन्दर्यात्मक मूल्यों के परिवर्तन के निमित्तों पर काडवेल ने वैज्ञानिक विवेचना की है। उनके अनुसार :—

१—सुन्दर वस्तुओं पर हमारी प्रतिक्रिया लगभग समान नहीं होती; बल्कि उस वस्तु का रूप, रंग, भाव, प्रत्येक व्यक्ति के अनुरूप ही उत्तेजना उत्पन्न करता है, और

२—एक युग से दूसरे युग में सुन्दरता के प्रति अनुभूतियां परिवर्तित होती रहती हैं। कोई भी युग अपने पूर्वयुग के पूर्वजों के सौन्दर्य-मूल्यों से संतुष्ट नहीं रहता है; उन मूल्यों की पूर्णता नवीन युग की सामाजिक कलात्मक रुचियों की आवश्यकताओं के सम्मुख अपर्याय हो जाती है। अतः नए युग के कलाकार नूतन सौन्दर्य मूल्यों का सृजन करते हैं।[९] यद्यपि अतीत अभी भी आकर्षक और सुन्दर होता है, लेकिन अब वह एक दूर की आकुल छाया या दूरागत वंशी ध्वनि सा-हो सम्मोहन कर पाता है। और, जो युग अपने पूर्व युग की सौन्दर्यात्मकता तथा कला से जितना अधिक अतृप्त होगा वह उतना ही उदात्त, क्रान्तिकारी और मौलिक कलाओं का सृजन करेगा। शुंग-युग के शताब्दियों पश्चात् भारत में नूतन कला-मानों के साथ गुप्त-युग का आविर्भाव हुआ; यूनानी कला सौन्दर्य तथा ईसाई धार्मिक कला से विरोध और असंतोष में ही इटेली की रेनेसां की कला का प्रादुर्भाव हुआ। द्विवेदी युग की अवशिष्ट रीति कालीन नैतिकता तथा इतिवृत्त, स्थूलता और सामंतकालीन संस्कारों के विरोध में छायावादी कला का प्रादुर्भाव हुआ।

सौन्दर्य एक बाह्य गुण है। उसकी स्थिति वातावरण में है। तभी तो मनुष्य किसी वस्तु की सुन्दरता से आकृष्ट होते हैं, परन्तु वे स्वयं अपने को सुन्दर नहीं समझने लगते हैं। वे सौन्दर्य की आशंसा भी करते हैं तो सौन्दर्य का सृजन (शिल्प, साहित्य, चित्र, नृत्य आदि) भी करते हैं। कभी कभी वे सौन्दर्य में योग भी देते हैं (पुरानी परम्पराओं का आधुनिकीकरण)। अतः सौन्दर्य (हो सकता है कि व्यक्तिगत मौलिक सौन्दर्य-मूल्य उसमें बोधात्मकता, मार्मिकता, नवलता को समय से कुछ शीघ्र उपस्थित कर दे, जैसा कि युग के अनेक कलाकारों के सम्बन्ध में चरितार्थ होता है), एक सामाजिक गुण है। यह असंख्य जनता (सहृदयों) के हृदयों, नयनों, श्रवणों और शृंगारों के अंजन से रंजित रहता है—कला, कला-कृतियां तो उसको

---

९. क्रिस्टोफेर काडवेल, फर्दर स्टडीज़ इन ए डाइंग कलचर, सौन्दर्य-सर्ग।

अलन्करण भी सौन्दर्य का प्रयोजन है, यद्यपि इसका सबध रति-भाव तथा व्यक्तिगत प्रकाशन के प्रयोजनों से अपेक्षाकृत अधिक निकट का है। सौन्दर्य की अभिवृद्धि, भावों में अधिक तरलता, शैली की उत्कृष्टता, नयनानुरजन आदि अलकारों द्वारा होता है। हृदय में उल्लास, कौशल की सूक्ष्मता, ओज का आभास भी अलकारों के द्वारा ही होता है। काव्य के अलकार, भावों के आरोपण, माधुर्य, प्रतीकतत्व तथा चमत्कार के लिए होते हैं, तो शिल्प और नृत्य के आभरण, सज्जा, दीप्ति तथा मुद्राओं को भगिमा देने के लिए। कुन्तल अपने 'सुकुमार मार्ग' के अन्तगत रस और भावों को प्रधानता देते हैं, उसमें मनोहर और स्वल्प विभूषणों को स्थान देते हैं, उनमें कृत्रिमता के स्थान पर स्वाभाविकता को प्रश्रय देते हैं—'अयत्नविहित स्वल्पविभूषणा—'। वस्तुत सौन्दर्य को सहज होना चाहिए। अति-अलकार हानि भी करते हैं, पर सौन्दय के ये अविच्छिन्न अग भी हैं—। कला में 'विलास' की प्रतिष्ठा शब्दालकार या अन्य अलकारों के द्वारा ही होती है, लास्य के लिए ये अनिवार्य हैं, ताल में इनकी मनोहर झकार इन्द्रिय सवेग उत्पन्न करती है। इनके स्वर (सगीत, नृत्य में) और अर्थ (काव्य, चित्र आदि में) का ब्याह हो जाता है, सौन्दर्यशास्त्र की वेदिका पर इनकी उपस्थिति अनिवार्य है—। हाँ, अनुपात और उपयोगिता का निर्णय अवश्य किया जाना चाहिए। कभी कभी इनकी वैराग्य मूलक स्थितिया भी सौन्दयशास्त्र में सहायक होती हैं, जैसे, निरलकृता वियोगिनियाँ, अथवा राम के लिए किष्किंधा के पवतों में मिले हुए सीता के आभूषणों का महत्व, या शकुतला की लुप्त अगूठी। काव्य और शिल्प में इन अलकारों, भूषणों, आभरणों का स्थान रहेगा।

सौन्दर्य का अन्य प्रयोजन भावनारोपण (एम्पेथी) भी है। स्थूल रूप में अन्तर्भावों का बहिर्गत आरोपण (व्यापक अर्थ में मानवीकरण) ही 'इम्पैथी' है।

अत कला, रतिचयन, व्यक्तिगत प्रकाशन, धर्म, अलकरण और आरोपण सौन्दर्यात्मक तथा कलात्मक मूल्यो के प्रमुख प्रयोजन हैं जो निरतर प्रगतिशील और परिवर्तनशील हैं।

अपने व्यापकरूप में सौन्दर्यबोधात्मक अनुभव (ऐस्थेटिक एक्सपीरियेंस) किन्हीं अशो में भारतीय रसास्वाद का समपर्याय माना जा सकता है, लेकिन रसास्वादन के आनद को 'अलौकिक' बनाकर उसे ब्रह्मानन्द-सहोदर के पद पर आसीन कर देता है जहाँ तक सौन्दर्यशास्त्र की पहुँच नहीं है। मध्यकालीन आदर्शवादी दृष्टिकोण होने के कारण ही रसानद के तत्वो में इस भावभूमि का आधार अभी तक स्थिर रहा है।

रूपगोस्वामी की हिन्दी कविता

राम सिंह तोमर

रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी चैतन्य महाप्रभु के शिष्य तथा समसामयिक थे। रूप, सनातन और जीव गोस्वामी ने भक्ति-विशेषरूप से गौड़ीय वैष्णव भक्ति से संबंधित अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियाँ संस्कृत में लिखी हैं। रूप गोस्वामी की उज्ज्वल नीलमणि तथा भागवतामृत तथा सनातन गोस्वामी को भक्तिसंदर्भ, भक्तिरसामृतसिन्धु प्रसिद्धतम कृतियाँ हैं। दोनों ही परम भक्त थे। उन्होंने वृंदावन में जीवन बिताया। रूप गोस्वामी ने ब्रजभाषा में कोई रचना की हो इसका कोई उल्लेख कहीं नहीं मिलता। विश्वभारती के बंगला हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहालय के एक हस्तलिखित ग्रंथ में रूप गोस्वामी के हिंदी में रचित कुछ दोहे मिलते हैं।[1] दोहों की भाषा बहुत परिष्कृत नहीं है। दोहे बंगाक्षरों में हैं—उनको देवनागरी लिपि में यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

दोहों की भाषा में बंगला का प्रभाव यत्र तत्र दिखता है, बंगला लिपि में लिखे जाने के कारण भी कहीं कहीं शब्दों का रूप बंगला उच्चारण के अनुरूप लिखा गया है—यथा सनातन का सोनातन, मन का मोन।

श्री श्रीरामः ॥

॥ श्री रूपगोस्वामिर दोहा लिख्यते ॥

डहक बहक बहुत फिरेतेहे भक्ति ना जाने कोइ।
बिन्दाबनमे भक्तिदाता रूप सोनातन दोइ।
रागानुगा भजन करो करो व्रज कि रित।
नन्दनन्दन पाओगे त करो रूप सो प्रित।
नेहि नेहि ए दो दोहा एह रसके भूप।
जाति कुल मज्यादा खोके भज सोनातन रूप ॥१॥
रूप रसके सरोवर जान भजन करो बास करो कुण्ड दुइ।
राधा कृष्ण ध्यान करो तो रूपानुगा होइ॥

---

१. पुँथि परिचय—प्रथम खण्ड, विश्वभारती, १३५८ बंगाब्द, पृ० २०६-२०७। प्रति बहुत पुरानी नहीं प्रतीत होती, बंगला हस्तलिखित प्रतियों के संपादक डा० पंचानन मंडल का अनुमान है कि हस्तलेख दो सौ वर्ष पुराना होगा।

मति फाटे मोन मिले मन फाटे सोना होय।
ओछा छो हिति करे आखेर सब कुछ खोय ॥
रुप रघुनाथ को भजन बिने जो जिए जगत ससार।
आत्मा ना मस्त बनाया जेछे मालाकार ॥
रूप ना स्मोङरे[२] स्मोङरे रघुनाथ।
हेन जनार सङ्गे मोर नाहि साथ ॥२॥
रूप रूप सब कोइ कहे मनमे उपजए रग।
रूप ना जानके रूप कहाय करे भजनका भग ॥३॥
हरि के फिरे न पयठ द्रव लोम फिरे सब देस।
मन लाम तु कहि उजर भक्त उजर केस ॥
साहेब सो सेवक वडा जानाया भगवान।
छमुद्र बाँधा रघुनाथ कूद गभो हनुमान ॥४॥

बगला के हस्तलिखित ग्रथों में हिन्दी कवियों की कविताए कहीं कहीं उद्धृत हुई मिलती हैं। इन उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि हिंदी के भक्तिकालीन कवियों की रचनाएं बगाल में लोकप्रिय थीं। प्रस्तुत पोथी में ही रुप सनातन के दोहों के पश्चात् तुलसीदास जी के कुछ पद्य, तथा कबीर के पद्य उद्धृत किए गए हैं। ये पद्य तुलसी तथा कबीर के ग्रथों में नहीं मिले तो कोई आश्चर्य नहीं। इनका स्रोत जनसामान्य है—पद्य इस प्रकार हैं —

तुलसीदासेर दोहा लिख्यते।

तुलसि सत्य वचन अरु अधिनता परत्रिय माय समान
एते पर हरि जो ना मिले तो तुलसिदास जवान ॥
तुलसि दुर्दिन हित अनहित हो जाय
वधिक वधो मृगवाहन ते रुधिर देत बाताय ॥
तुलसि समरथ सोइ जव तब आवे काम
लका दिये बिभिसने वड़ा विपदमे राम ॥
कुंजर मुख ते कन गिरो ताते न छुटे आहार
सोने चले पपेटेरि परपोसन पर आर ॥

---

२ स्मरण करो।

जेछको पाउको पनिहा नाहि नाहि ओछको गजराज।
बिखि दिते बिखमादित्य आजब गरिबनेबाज ॥

कबीर का पद :—

अनहे तनखा काहा गरआइ मरनेक सरमे रहने ना पाइ।
जो सब लोक जतन करि पाले नेहि नेहि करि बाहिर डाले ॥
तेल फुलेल मंगल जेइ अंगा आखेर जलताइ काठकि संगा।
कहत कबिर षुन मोन मेरा आखेर अहि गति होयगि तेरा ॥
जब जोमराज किए हो पयान चुफति फिरे कुठरि कुठरि
आबे तलबदार छोड़ छोड़ नगरि।
नेइ जान माया संगे चलंगि जोरि धरो कोड़ि कोड़ि
खेनएक बिलम्ब कर जमराज समकन देह बगरि बगरि।
कहत कबिर षुन लोक नर एह माया दुनिआ बिगरि ॥

ग्रंथ समीक्षा

मृगावती (कुतुवन कृत सूफी प्रेमकाव्य)—संपादक—डा० माता प्रसाद गुप्त—निदेशक, क० मु० हिंदी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ, आगरा, प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा १९६८ पृ० स० ३६८, मूल्य २०) रुपये।

मध्ययुगीन प्रेमाख्यान परंपरा में 'मृगावती' का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कुतुवन की मृगावती का जायसी को पता था, 'पद्मावत' में मृगावती की कथा का उन्होंने उल्लेख किया है। मृगावती और पद्मावत की कथावस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन करने पर लगता है कि कहीं कहीं जायसी ने अपनी कथा को सँवारने में 'मृगावती' की कथा का सहारा लिया है। पद्मावत और मृगावती के उत्तरार्द्ध कथांशों में बहुत समानता है। अन्यत्र भी दोनों कृतियों में अनेक समान कथानक रूढ़ियाँ मिलती हैं। विक्रम की सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में बनारसी दास ने अपने आत्मचरित्र 'अर्द्धकथा' में मृगावती के पढ़ने का उल्लेख किया है—'मधुमालती मृगावती पोथी दोय उचार'। मृगावती की कथा उत्तर भारत में बहुत लोकप्रिय थी और हिन्दी तथा बंगला में एकाधिक मध्ययुगीन कवियों ने इस विषय को लेकर काव्यरचना की है। डा० गुप्त जी ने अनेक ऐसी रचनाओं का भूमिका में परिचय दिया है। कुतुवन की कृति का संभव है, इनमें से कुछ ने उपयोग किया हो। कुतुवन ने स्वयं मृगावती को, अपने से पूर्व की, कथा परंपरा का कृति के अंत में इस प्रकार उल्लेख किया है —

> पहिले हिंदुई कथ्थया अही। फुनि रे काहुं तुरकी लै कही।
> फुनि हम खोलि अरथ सब कहा। जोग सिंगार बीर रस अहा।
> बहुत अरथहहिं एहि मंह जौं कोइ सुधि सेउ बूझ
> कहेउं जहाँ लगि पायेउं जो किछु हिरदै में सूझ ॥ कडवक ४२६ ॥

अर्थात्—पहले यह कथा हिंदवी (हिंदी) में थी, फिर किसी ने उसका तुरकी में रूपान्तर किया। फिर हमने उसका सब अर्थ स्पष्ट रूप से कहा। योग, शृंगार, वीर रस इसमें है या इसमें शृंगार, वीर रस का योग है। इसमें बहुत अर्थ है जो कोई शोध करेगा वह समझेगा, मेरे हृदय में जो कुछ सूझा और जहाँ तक मैं कर सका, कहा है।"

यह कथन, स्वाभाविक है, प्राकृत कथा साहित्य के कुछ इसी प्रकार के प्रसंगों का स्मरण कराता है। गुणाढ्य की बृहत्कथा के तो रूपान्तर हुए ही हैं। जैन कथाकृति तरंगवती (तीसरी शती ई०) कठिन देशी शब्दों में लिखी गई थी, बहुत दुरूह थी, इसलिए मूल रचना के रचनाकाल के बहुत पीछे नेमिचंद्रगणि ने तेरहवीं शती में तरंगलोला नाम से उसकी फिर रचना की। कुतुवन ने भी मृगावती को सर्वजन सुगम रूप में प्रस्तुत किया। अपभ्रंश में जम्बूस्वामि चरित (रचनाकाल सं १०७६) को उसके रचयिता कविवर वीर ने 'सिंगार वीर-महाकाव्यें' (शृंगार-वीर महाकाव्य) कहा है। यद्यपि प्राकृतापभ्रंश कृतियों में तथा कुतुबन की कृति में प्राप्त ये साम्य आकस्मिक भी हो सकते हैं तथापि इन संकेतों तथा कृति में कुछ और उल्लेख मिलते हैं जिनके आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि कुतुबन अपनी पूर्ववर्ती

प्राकृतापभ्रंश कथाकाव्यधारा से परिचित थे। ऊपर उद्धृत—उपसंहार के कडवक में ही एक और पंक्ति इस प्रकार है—

खट भाखा आहहि एहि मांझा। पंडित बिनु बूझत होइ सांझा। अर्थात् इसमें षडभाषाएँ हैं, पण्डित के बिना उनको समझने में संध्या हो जावेगी।

षडभाषाएँ कौनसी हैं? प्राकृत के छः प्रकारों का प्राकृत वैयाकरणों ने विवेचन किया है—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अर्द्ध मा०, पैशाची और चूलिका पैशाची। षड्भाषाचंद्रिका जैसी व्याकरण कृतियाँ भी मिलती हैं। चंद बरदाई तथा अन्य कुछ कवियों ने षड्भाषाओं में पुराण कुरान को भी गिना दिया है। कुतुबन ने षड्भाषाओं के नाम नहीं दिए हैं फिर भी उनके द्वारा 'खट भाखा' का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है और उसमें मध्ययुगीन कवियों में प्रचलित किसी परंपरा का स्मरण किया गया है। भाषा की विविधता कुतुबन की कृति में मिलती है, डा० गुप्त जी ने इस विषय में जो अभिमत प्रकट किया है वह सर्वथा सही है। कुतुबन की अवधी पुरानी अवधी है। मृगावती में भाषा के दो स्तर मिलते हैं; चौपाइयों की भाषा तत्कालीन बोलचाल की अवधी है और दोहों की भाषा साहित्यिक अवधी है तथा उस पर अपभ्रंश की छाया दिखती है। कुतुबन के दोहों में अनेक ऐसे शब्द मिलते हैं जो हेमचंद्र द्वारा उद्धृत दोहों तथा संदेश रासक के पद्यों में मिल जाते हैं, यथा—दरक्कि, परक्खिअइ, खुरुकहिं, झुरुष्ष। तथा, कई दोहे ऐसे भी हैं जिनमें भावसाम्य के अतिरिक्त शब्दावली भी वही है—यथा—

काग उड़ावत धनि खरी आइ संदेसु भरक्कि।
आधी बरया काग गलि गइ आधी गई तरक्कि॥

हेमचंद्र के व्याकरण में यह दोहा इस प्रकार है:—

वायसु उड्डावंतिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुड तडत्ति॥

निम्नलिखित दोहा संदेश रासक के एक दोहे से मिलता है—

संदेसे गुन निस्तरौं जो कोइ कहन समत्थ।
अंगुरी कहं मुंदरी गढी विवि रे समानी हत्थ॥

मध्ययुग की अनेक कृतियों में अन्य कवियों के सुंदर पद्यों को उद्धृत करने की प्रथा मिलती है। ढोला मारू रा दूहा जैसी कृतियों में तो अनेक ऐसे दोहे मिलते हैं जो अन्यत्र भी मिलते हैं। पृथ्वीराज रासो की अनेक गाथाएँ, लगता है, अन्यत्र से उद्धृत किए गए हैं। कुतुबन ने अपनी कृति में 'खट भासा' के प्रयोग की सूचना दी है, संभव है ऐसे पद्यों को ही अपने कथन का आधार समझा हो। कुतुबन की भाषा में पूर्वी प्रयोग भी जहाँ तहाँ मिलते हैं। गुप्त जी ने कुतुबन की भाषा का विवेचन करते हुए ऐसे प्रयोगों की चर्चा की है।

मृगावती की रचना तिथि का कवि ने उल्लेख किया है। विद्वान् संपादक ने रचयिता द्वारा दी गई तिथियों की शुद्धता की जाँच की है—कृति का रचनाकाल सं० १५६० है। संपादन के लिए कृति की उपलब्ध सभी हस्तलिखित प्रतियों को संपादक ने देखा है, इस

संपादन सामग्री का कृति की भूमिका में विस्तार से परिचय दिया है। संपादन सामग्री की बड़े ही सूक्ष्म ढग से परीक्षा करके संपादन-सिद्धान्त स्थिर किए हैं। संपादन प्रणाली अत्यंत वैज्ञानिक तथा प्रमाण पुष्ट है।

मृगावती अत्यंत सरस प्रेमकथा है। कृति की टीका भी संपादक ने साथ में दी है अत: अवधी से अपरिचित काव्यरसिक भी कृति का आनंद उठा सकते हैं और टीका की सहायता से मूल कृति के रचना कौशल का रसास्वादन कर सकते हैं।

विश्वास है डा० गुप्त जी द्वारा मृगावती के इस सुसंपादित संस्करण का विद्वज्जगत् आदर करेगा, हमारे मध्ययुगीन साहित्य की अनेक अनुपम कृतियों के वैज्ञानिक ढंग से संपादित प्रामाणिक संस्करण गुप्त जी ने हमें दिए हैं और इस प्रकार हिंदी के अध्ययन के आधार को उन्होंने सुदृढ़ बनाया है। प्रस्तुत कृति के कुछ और भी संस्करण निकले हैं, उनमें प्राप्त विसंगतियों की ओर डा० श्याममनोहर पाण्डेय ने विस्तार से अपनी कृति 'सूफी काव्य विमर्श' (पृ० ६१ ७४) में विचार किया है। अत: यहाँ हम उनके सापेक्षिक महत्त्व के संबंध में कुछ नहीं कहेंगे।

—

द बायोग्रेफी अव् महापण्डित विमलमित्र—लेखक—साधु डोरूप छेन, गंगटोक, सिक्किम, १९६७, पृ० ४२।

इस छोटी सी पुस्तिका में तिब्बती भाषा में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर महापण्डित विमलमित्र का परिचय दिया गया है। विमलमित्र उन अनेक भारतीय महापुरुषों में से एक थे जिन्होंने तिब्बत और चीन में जाकर बौद्धधर्म का प्रचार किया। तिब्बती परंपरा के अनुसार उनका जन्म ईसा की पहली शती में पश्चिमी भारत में हुआ था। आचार्य बुद्धगुह्य से तथा अन्य आचार्यों से उन्होंने बौद्धशास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की। बोधगया में उस समय अनेक पण्डित रहते थे—उनमें विमलमित्र की बड़ी ख्याति थी। भिक्षु होकर वे चीन गए और अनेक वर्षों वहाँ रहे। अपने भ्रमणकाल में विमलमित्र ने अनेक चमत्कार दिखाए—सुवर्णद्वीप, उड्डीयान गए और कपिलवस्तु के राजा इन्द्रभूति के यहाँ अनेक वर्ष रहे। तिब्बती राजा ठ्री ठ़ोंग दे सन के आमंत्रण पर वे तिब्बत गए और सम्ये विहार में रहे। राजा को उन्होंने अनेक आश्चर्य दिखलाए, प्रभावित होकर राजा ने उनका स्वागत सत्कार किया। सम्ये विहार में तेरह वर्ष रहकर महापण्डित ने अनेक ग्रंथों के संस्कृत से तिब्बती में अनुवाद किए तथा तिब्बती लोत्सवाओं (पण्डित) की सहायता से अनुवाद कराए। तिब्बत से अंत समय में आचार्य चीन के पंचश्रृंग पर्वत पर चले गए और वहीं वे स्वर्गवासी हुए।

तिब्बती ग्रंथों में अनेक भारतीय पण्डितों तथा सिद्धों की जीवनियाँ मिलती हैं। उनमें कल्पना अधिक और ऐतिहासिकता बिल्कुल गौण है। सभी जीवनियों में प्राय: एक सी बातों

की चर्चा मिलती है—दीक्षा, तपस्या, चमत्कार प्रदर्शन आदि की घटनाएँ प्रायः एक समान ढँग से कही गई हैं। विमलमित्र की जीवनी भी उसी शैली में लिखी गई है। उसमें ऐतिहासिकता को ढूँढना व्यर्थ होगा। कृति में उनका चित्र भी दिया गया है जिसे प्रस्तुत अंक में दिया जा रहा है। चित्र कल्पित है—सभी सिद्धों, पण्डितों के चित्र प्रायः समान दिखते हैं—रंगों के प्रयोग की शैली प्रायः एक सी है। प्रस्तुत जीवनो के अंत में तिब्बती ग्रंथों (निंगम् ग्युद् बुम तथा तंग्युर संग्रहों) में प्राप्त विमलमित्र द्वारा तिब्बती में अनूदित बावन ग्रंथों के नामों की तालिका दी गई है। विमलमित्र कभी हुए हों, और कहीं उनका जन्म हुआ हो—यह बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने बड़ी निष्ठा से सांस्कृतिक आदान प्रदान का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। तिब्बती लोगों के वे श्रद्धाभाजन बन गए और बौद्ध मत से तिब्बतियों को परिचित कराने के लिए मूल संस्कृत ग्रंथों को अनूदित करके महान् कार्य किया। प्रामाणिक ग्रंथ सूची तथा जीवनी के लिए श्री डो ड्रुप छेन को हम धन्यवाद देते हैं। हम आशा करते हैं कि वे क्रमशः सभी भारतोय पण्डितों द्वारा अनूदित ग्रंथों की सूचियाँ इसी तरह प्रकाश में लाते रहेंगे। तंग्युर और कनग्युर की सूचियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं—अन्य तिब्बती संग्रहों में सुरक्षित ग्रंथों की सूचियाँ प्रकाशित होने से भारतीय संस्कृति पर नया प्रकाश पड़ेगा। अनेक ग्रंथ अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं हैं, तिब्बती अनुवादों के रूप में सुरक्षित रह गए हैं। उनसे हमारी संस्कृति के अनेक पहलुओं पर प्रकाश पड़ेगा।

राम सिंह तोमर

दयाराम सतसई (सटीक)—सम्पादक डा० अम्बाशंकर नागर एम० ए०, पी एच० डो०, प्रोफेसर इंचार्ज : हिन्दी विभाग, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद।
प्रकाशक—साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९६८ ; पृष्ठ संख्या ६ + ३१८=३२४, सजिल्द, मूल्य—१६ रुपया।

डा० अम्बाशंकर नागर विगत दश वर्षों से गुजरात अंचल के अनेक प्राचीन हिन्दी कवियों और उनकी कृतियों के उद्धार कार्य में सतत साधनरत हैं। उत्तर मध्यकालीन गुजराती साहित्य के अंतिम किन्तु अन्यतम सुकवि दयाराम की ब्रजभाषा सतसई का यह प्रकाशन उनके अध्यवसाय की नवीनतम उपलब्धि है। प्रस्तुत सतसई हिन्दी की सतसई परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। कलात्मक प्रकर्ष और सरसता की दृष्टि से यह मतिराम और बिहारी सतसई की श्रेणी में रखी जा सकती है। यद्यपि बिहारी या अन्य सतसईकारों ने उदाहरण प्रस्तुत करते समय ऐसी रचनायें नहीं की हैं जिसे चित्रकाव्य कहते हैं, पर दयाराम ने अपनी सतसई में चित्रकाव्य की भी रचना की है। यही नहीं उन्हें उदाहरण के साथ साथ लक्षण